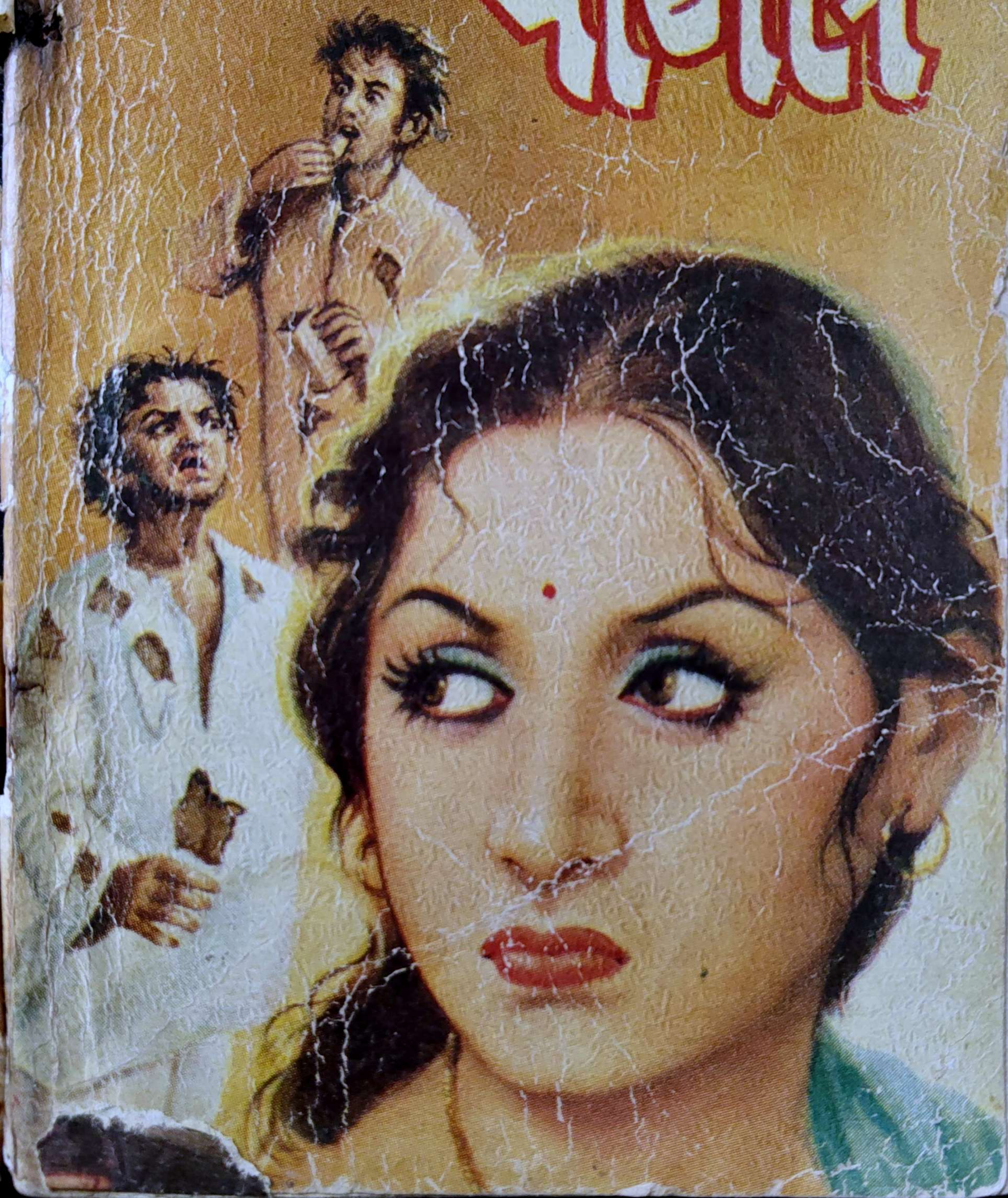
कुशवाहा 'कान्त'

पागल



पागल

"तारकबाबू ! अपनी जबान पर काबू रखिये...." विन्दु बोली। तारक की घृणित मनोवृति अब उसकी समझ में गई थी।

"इतनी लाल पीली मत होओ, विन्दु !..." यह कहकर तारक हाथ बढ़ाकर विन्दु की कलाई पकड़ ली। "उफ ! रोष से नृत्य तुम्हारे ये मदभरे नयन अद्‌भुत हैं ! जी चाहता है इन्हें चूम और तृप्त हो जाऊँ..."

"अपना भला चाहते हो तो मेरा हाथ छोड़ दो और यहाँ से जाओ, वर्ना मैं चिल्ला पड़ूँगी।"

"चिल्लाकर तुम अपना ही अहित करोगी...." पैशाचिक हँसी वह बोला—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ—प्यार का ठुकराया काल बनकर घहरा पड़ता है, यह न भूलो। मैं कौन हूँ, यह अच्छी तरह जानती हो।"

"खूब अच्छी तरह जानती हूँ—तुम मानव के वेश में दानव , तुम्हारा रग-रग विष से भरा हुआ है....फिर भी एक साध्वी ी का तुम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

"अब बिगाड़कर ही दम लूँगा। अपनी प्रवल अकांक्षा की किये बिना मैं टलने का नहीं—तुम्हारे इस क्षणिक रोष से डर नहीं जाऊँगा..." कहते हुए तारक ने विन्दु को अपने बाहु- में कस लिया।

—इसी उपन्यास में से

C.K. Kushawaha
3/3/81



१

रेलगाड़ी से उतर कर, जब से अधरकुमार उस ताँगे पर सवार हुआ था, उसका चंचल मन बराबर चिन्तासागर में गोते लगा रहा था।

ताऊ के सख्त बीमार होने का तार अभी प्रातःकाल ही उसे मिला था और यही कारण था कि वह बी० ए० फाइनल की परीक्षा देना छोड़, आज इस प्रकार अपने गाँव को चल पड़ा था।

अधर ने तन्मयतापूर्वक एक बार अपने चारों ओर देखा। कच्ची सड़क पर जाते हुए ताँगे की धूल, धीरे-धीरे उड़कर वातावरण में विलीन हो जाती और इधर से धूल की एक नई धारा प्रवाहित होकर, पहली का अनुसरण करती थी।

सड़क के दोनों किनारों के खेत और उनमें काम करते हुए सैकड़ों किसान—सब ताऊ की जमींदारी में ही थे। ताऊ का स्वभाव इतना नम्र था कि सभी उनके लिए मर मिटने को प्रस्तुत रहते थे। अमीर-गरीब सभी के प्रति उनका समान व्यवहार रहा करता था। उनके सदृश परोपकारी मनुष्य तो कदाचित् ही कोई रहा हो। वे सदा दुर्बलों, धनहीनों एवं दुखियों की सहायता में तत्पर रहा करते थे।

गाँव के लोग जानते थे कि अधरकुमार ताऊ का ही पुत्र है, परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत थी। वह अनाथ था, जिसे बाल्यावस्था से ही पाला-पोसा गया था—ठीक अपने लड़के की तरह।

कई वर्ष पूर्व की बात है—गंगा दशहरा जलोत्सव के त्योहार पर वे गंगा के किनारे खड़े विशाल जन-समूह का हर्षोल्लास देख रहे थे। शुभ्र-स्वच्छ कपड़ों के मध्य इनकी गम्भीर मुखाकृति देखकर

१

रेलगाड़ी से उतर कर, जब से अधरकुमार उस ताँगे पर सवार हुआ था, उसका चंचल मन बराबर चिन्तासागर में गोते लगा रहा था।

ताऊ के सख्त बीमार होने का तार अभी प्रातःकाल ही उसे मिला था और यही कारण था कि वह बी० ए० फाइनल की परीक्षा देना छोड़, आज इस प्रकार अपने गाँव को चल पड़ा था।

अधर ने तन्मयतापूर्वक एक बार अपने चारों ओर देखा। कच्ची सड़क पर जाते हुए ताँगे की धूल, धीरे-धीरे उड़कर वातावरण में विलीन हो जाती और इधर से धूल की एक नई धारा प्रवाहित होकर, पहली का अनुसरण करती थी।

सड़क के दोनों किनारों के खेत और उनमें काम करते हुए सैकड़ों किसान—सब ताऊ की जमींदारी में ही थे। ताऊ का स्वभाव इतना नम्र था कि सभी उनके लिए मर मिटने को प्रस्तुत रहते थे। अमीर-गरीब सभी के प्रति उनका समान व्यवहार रहा करता था। उनके सदृश परोपकारी मनुष्य तो कदाचित् ही कोई रहा हो। वे सदा दुर्बलों, धनहीनों एवं दुखियों की सहायता में तत्पर रहा करते थे।

गाँव के लोग जानते थे कि अधरकुमार ताऊ का ही पुत्र है, परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत थी। वह अनाथ था, जिसे बाल्यावस्था से ही पाला-पोसा गया था—ठीक अपने लड़के की तरह।

कई वर्ष पूर्व की बात है—गंगा दशहरा जलोत्सव के त्यौहार पर वे गंगा के किनारे खड़े विशाल जन-समूह का हर्षोल्लास देख रहे थे। शुभ्र-स्वच्छ कपड़ों के मध्य इनकी गम्भीर मुखाकृति देखकर

उम्र इनकी सत्तर के लगभग है, पर चलते हैं अकड़ कर ही।

"खेत में पटेंग दे देना और मजदूरों से कह देना कि उसमें कियारी बना दें..." काका अपने हलवाहे से कह रहे थे।

"क्या बोया जायगा, जौ कि गेहूँ ?" हलवाहे ने पूछा।

नारायण काका ने कान से हाथ लगाया—"क्या कहता है। थोड़ा जोर से बोल न !"

"खेत में क्या बोया जायगा ?..." हलवाहे ने अपना स्वर ऊँचा किया।

"तू खेत तैयार करा—बोने के समय मैं आ जाउँगा—समझ गया ?"

"जी !"

"घी ?...घी क्या करेगा ?...." काका हलवाहे की बात ठीक से न सुन सके—"हँसता है ?....जा भाग ! काम के समय घी-घी करता है...और देख जल्दबाजी न करना, नहीं तो खेत खराब हो जायगा। मैं जरा ताऊ को देखकर अभी आता हूँ। बेचारे कई दिन से बिमार हैं, अवस्था दिन प्रतिदिन चिन्ताजनक होती जा रही है..." कहकर काका ने शरीर पर निमस्तीन कसी, दुपट्टा कन्धे पर रखा, पाँवो में पनहीं डाली और हाथ में लाठी लेकर ताऊ की हवेली की ओर चल पड़े।

रास्ते में उन्हें जो भी देखता 'राम-राम' करता। काका भी प्रत्याभिवादन करके आगे बढ़ जाते। रास्ते में काका को देखकर एक लड़का पूछ ही बैठा—"किधर को चले काका सबेरे-सबेरे ?"

"सबेरा है अभी ? उल्लू कहीं का ! देख तो, सूर्यनारायण का रथ कितना ऊपर चढ़ आया है ?" काका ने उँगली से उदय होते हुए भुवनभास्कर की ओर संकेत करके कहा। लड़का चुपचाप चला गया। काका आगे बढ़ चले।

ताऊ की हवेली पक्की और दो मंजिली थी, जिसे देखकर सहज ही ज्ञान होता है कि हवेली का मालिक अवश्य ही सम्पन्न है।

दरवाजे पर ताऊ का नौकर रामू बैठा था। काका को देखते ही बोला—"आओ काका !"

"ताऊ की तबीयत कैसी है ?" काका ने रामू के पास खटिया पर बैठते हुए पूछा।

"बीमारी बढ़ती ही जा रही है, काका ! छोटे सरकार को तार दिया गया है, मगर वे अभी तक नहीं आये हैं। आयें या न आयें—इसमें भी संदेह है। उनकी परीक्षा हो रही है न !"

"नहीं-नहीं अधर लायक लड़का है। ताऊ की बीमारी का तार पाकर वह परीक्षा छोड़कर दौड़ा आयेगा। ताऊ को वह प्राणों से भी अधिक चाहता है..."

"ताऊ भी तो उन्हें बहुत मानते हैं, काका ! जब से बीमार हुये हैं बराबर उन्हीं का नाम उनकी जबान पर है !"—चिलम भरकर काका के हाथ में देते हुए रामू ने कहा।

"तारक कहाँ है....?" काका ने पूछा तो रामू बोला—"उनकी न पूछिए। आजकल वे ताऊ की सेवा करने को बहुत उत्सुक रहते हैं, मगर ताऊ न जाने क्यों उन्हें दिन भर झिड़कियाँ सुनाया करते हैं। अब तो उन्होंने उनसे साफ-साफ कह दिया है कि तू मेरे पास न आया कर। घर के बाहरी हिस्से में रहने का तेरा प्रबन्ध कर दिया है। मुझे भी आश्चर्य होता है कि अपने ही वंश के भतीजे को प्यार न कर, ताऊ अधर को इतना क्यों चाहते हैं ?"

"तारक में उन्होंने अवश्य कोई बुराई देखी होगी !..."

"ऐसा न कहो काका ! तारक बाबू ऐसे नहीं हैं..." रामू ने अपने दोनों कानों की नोंक छूते हुए कहा—"बड़े भले आदमी हैं। अभी दो साल भी तो नहीं हुए उनको आये, मगर उन्होंने अपने नम्र स्वभाव से सबको वश में कर लिया है।"

"तो आजकल ताऊ किसी से प्रसन्न नहीं रहते ?"

"रहते हैं तो केवल बिन्दु से, उसी भिखारिणी से, जिसे दो महीना हुआ अनाथ जानकर वे अपने घर ले आये थे। आजकल

वह रानी की तरह रहती है, काका !"

"ताऊ बड़े परोपकारी जीव हैं। असीम धन है, पाँच सौ बीघे जमीन है—खर्च भी तो होना चाहिए ?...." काका बोले—"जरा मैं ताऊ से भेंट करना चाहता हूँ।"

"जाओ काका ! अभी ही वे सोकर उठे हैं।"

काका उठकर भीतर की ओर चले। ताऊ कृश शरीर लिए पलंग पर पड़े थे। पायताने एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की सुन्दर किशोरी बैठी हुई उनकी सुश्रुषा कर रही थी। काका आकर पायताने बैठ गये। किशोरी भीतर चली गई। ताऊ जाग रहे थे ! काका ने उनके सर पर हाथ रक्खा, नाड़ी देखी, तत्पश्चात् बोले—"कैसी तबीयत है ताऊ ?"

यद्यपि काका ताऊ से अवस्था में बड़े थे, फिर भी स्वभावतः वे उन्हें ताऊ ही कहा करते थे। ताऊ भी उन्हें काका कहकर पुकारते थे।

"अब जीवन की आशा नहीं रही, काका !" ताऊ बोले—"जीवन-प्रदीप कब बुझ जाय, कोई ठीक नहीं।"

"ऐसा न कहो ताऊ ! भला ऐसा भी कोई कहता है ? अभी तुम्हारी अवस्था ही क्या है—यही चालीस ही तो होगी। मुझे देखो, सत्तर पार कर चुका हूँ, अभी तीस और पार करूँगा...ऐसी अधीरता किस काम की ! तुम जैसा परोपकारी मनुष्य इतनी जल्दी संसार छोड़कर नहीं जा सकता, ताऊ !"—काका ने निश्चयात्मक और सान्त्वनापूर्ण स्वर में कहा।

"परोपकारी कहकर तुम मुझे आसमान पर चढ़ा रहे हो, काका ! लड़खड़ा रही जिन्दगी, कहीं समय से पहले न छू पड़े।" खाँसते और गला सहलाते हुए कृश स्वर में ताऊ बोले।

काका कहने लगे—"भले आदमी की प्रशंसा सभी करते हैं, ताऊ ! तुम्हारे चले जाने से हमारे बीच से एक अमूल्य रत्न चला जायगा। उस अभाव की कौन पूर्ति करेगा, बताओ तो !...तुमने

दीन अनाथों के प्रति जो दया दर्शायी है, वह क्या विस्मरणीय है। भला कोई कह सकता है कि अधर तुम्हारा पुत्र नहीं है। गांव के दो चार ही व्यक्ति तो इस भेद को जानते हैं। दो साल से तुम्हारा भतीजा तारक यहीं रहता आ रहा है—इधर उस अनाथ बालिका को भी तुमने अपने यहाँ शरण दे रखा हैं। कितने ही अनाथालय तुम्हारी सहायता से चल रहे है—यह सब क्या है? क्या यह परोपकार नहीं? क्या जगत के सभी प्राणी इस प्रकार दयालु होते हैं?"

कुछ देर सन्नाटा रहा। ताऊ की साँस बेग से चल रही थी। थोड़ा खांसकर बोले—"विन्दु बड़ी साध्वी है, काका! दो महीने में ही उसने इस घर की हालत ही बदल दी है। जब से मैं बीमार हुआ हूँ, खाना, पीना और सोना वह भूल सी गई है, परन्तु काका! अधर अभी तक आया नहीं? क्यों नहीं आया?...वह नहीं आयेगा शायद! उसकी परीक्षा हो रही है न! काश! मरने के पहले एक बार उसे देख पाता..."

धैर्य रखो ताऊ! अधर अवश्य आयेगा। वह तुम्हें प्राणों से भी अधिक चाहता है। वह आता ही होगा..."

"भगवान करे तुम्हारा कथन सत्य निकले..." ताऊ के म्लान मुख पर प्रसन्नता की एक क्षीण आभा झलक उठी...! उन्होंने पुकारा—"विन्दु।"

विन्दु फूल-सी कोमल एवं मदिरा-सी मादक थी। कुछ ही दिन पहले वह ताऊ के घर में अनाथिनी होकर आयी थी। और आज अपनी शालीनता एवं सद्गुणों से सारे घर की अधिष्ठात्री बन गई है। नौकर-चाकर सभी उसके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।

"आई ताऊ?..." अन्दर से आवाज आई और आवाज के साथ ही वह आ उपस्थित हुई "क्या बात है ताऊ?"—पूछा उसने।

"काका कहते हैं कि अधर आता ही होगा...बेटी! तू जाकर उसका कमरा बुहार दे? भोजन बनाकर रख दे। देखना, उसे किसी

बात का कष्ट न हो।"

"मैं सभी प्रबन्ध पहले ही कर चुकी हूँ, ताऊ! उन्हें लाने के लिए ताँगा भी भेज दिया है।" बिन्दु ने कहा। हर्ष से ताऊ की मुखाकृति चमक उठी। उन्होंने दीवाल पर टँगी हुई घड़ी की ओर दृष्टिपात किया, जिसकी सूई नन्हें-नन्हें खानों को पार करती हुई जीवन के क्षणों को क्रमशः क्षीण कर रही थी—फिर भी वे गर्व-मिश्रित नेत्रों से काका की ओर देखकर बोले—"कहता न था काका, कि बिन्दु बहुत अच्छी लड़की है।"

इसी समय रामू ने भीतर प्रवेश कर प्रसन्न मुद्रा में कहा—"ताऊ, तारक बाबू बाहर खड़े हैं, आपसे मिलना चाहते हैं।"

ताऊ की भृकुटी तन गई। उनका दुर्बल शरीर काँप उठा! बोले—"कह दो उससे कि मैं ठीक हूँ।"

रामू चला गया! काका बोले—"ताऊ! तुम तारक से इतने खिंचे-खिंचे क्यों रहते हो? आखिर तुम्हारा भतीजा ही तो है।"

"काका!..." ताऊ कहने लगे—"भतीजा तो है, परन्तु उसका आचरण मुझे पसन्द नहीं! वह विषभरा कनक-घट है। उसके सुन्दर आवरण की ओट में दानवी-शक्ति काम करती है! उसके सम्बन्ध में इतना ही परिचय पर्याप्त है।"

"पर उसकी बातें तो बड़ी प्यारी लगती हैं, ताऊ!"

"यही तो विशेषता हैं उसमे। हाँथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और होते हैं।"

"सम्भव है तुम्हारी परख में कोई त्रुटि हो। मैंने सुना है कि वह तुम्हारी सेवा करने को बहुत उत्सुक रहा करता है।"

"क्यों नहीं, इतनी बड़ी जमींदारी के मालिक की सेवा कौन नहीं करना चाहेगा। परन्तु सेवा स्वार्थ-रहित होनी चाहिए। उसकी सेवा स्वार्थमय है। मेरे मरने के बाद यह सारी जमींदारी, यह सारा वैभव उसके ही चरणों पर लोटे—यही उसकी आकांक्षा है!

वह मेरे धन को लेकर गुलछर्रे उड़ाना चाहता है। तुम नहीं जानते काका ! कि यह धन मेरा नहीं, गरीब-दुखियों का है। मैं नहीं चाहता कि यह धन मेरे मरने के बाद वेश्याओं का घर आबाद करे.. मैं नहीं चाहता कि इस धन से गरीबों का गला घोंटकर विलासिता के सामान एकत्रित किये जांय। मैं यह सारा धन ऐसे सुपात्र के हाथ सौंपना चाहता हूँ, जो मेरी तरह इस धन का सदुपयोग कर सके....यह क्या ? कोई ताँगा दरवाजे पर रुका है क्या... यह धड़-धड़ की आवाज कैसी....?"

"अधर आ गया मालूम होता है—" काका ने कहा।

*   *   *   *

अधर तांगे से उतरा। रामू ने आगे बढ़कर उसके हाथ का का छाता थाम लिया। बोला—"कोई कष्ट तो नहीं हुआ, छोटे सरकार !"

"नहीं.. ताऊ की तबीयत कैसी है ?"

"चिन्ताजनक है, सरकार ! कोई आशा नहीं। न जाने उन्हें कौन सा रोग लग गया है..." कहता हुआ रामू तांगे पर से सामान उतार कर रखने लगा।

अधर अभी खड़ा हुआ इधर-उधर देख ही रहा था कि एका-एक मुख्य द्वार के पास खड़ी एक किशोरी पर उसकी दृष्टि अटक गई। उसकी अनुपम रूपराशि, देदीप्यमान मुखाकृति, यौवन-भार से नाचती आँखें अजब थीं—गजब थीं। विद्युत रेखा सी किवाड़ की आड़ में विलिन हो गई। अधर अतृप्त नयनों से अनिमेष द्वार की ओर देखता रहा।

"कौन थी यह रामू ?" अधर ने स्वस्थ होकर पूछा।

"किसकी बात पूछ रहे हैं, सरकार !"

"अभी-अभी एक लड़की को मैंने देखा है—उस दरवाजे की ओट में खड़ी थी, कौन है वह ?"

"विन्दु रही होगी सरकार ! कुछ ही दिन हुए ताऊ उसे ले आये हैं। इसके पहले वह भीख माँगा करती थी। बड़ी सुशील लड़की है, सरकार ! घर का सारा काम-काज आते कुशल गृहिणी की तरह सम्हाल लिया है—" रामू ने अन्तिम पर जोर देते हुए कहा।

"तुम आ गये भाई ?" पीछे से आवाज आई।

अधर ने घूमकर देखा—तारक खड़ा मुस्करा रहा था।

"कहो तारक, कैसे रहे ?"

"अच्छी तरह रहा।"

"ताऊ के पास चल रहे हो ?"

"मैं नहीं जा सकता हूँ, अधर भाई ! ताऊ ने मुझे भीतर को मना कर दिया है।"—तारक ने कहा।

"क्यों ?...आखिर क्यों ?" अधर ने साश्चर्य पूछ लिया।

"भाई, मैं अभागा हूँ। तुम तो जानते ही हो कि मेरे पिता ने बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ हृदय में रखकर, अपना सारा धन खर्च मुझे पढ़ाया, परन्तु पढ़कर भी मैं किसी योग्य नहीं बन सका। पढ़ाई में पिताजी के ऊपर हजारों रुपये ऋण हो गये ! उसी शोक कुछ दिनों बाद वे स्वर्गवासी हो गये और मैं अनाथ होकर तोड़ने के लिए यहाँ आ पहुँचा। सच कहता हूँ भाई ! ताऊ व्यवहार मेरे प्रति इतना कठोर है कि कभी-कभी हृदय में ग्लानि उत्पन्न होती है और आत्महत्या कर लेने की इच्छा प्रबल उठती है..." तारक ने कृतिम हताश वाणी में कहा !

"मैं ताऊ को समझाऊँगा। तुम अधीर न हो। यहीं मिलकर मैं अभी आता हूँ। साथ ही घूमने चलेगें आज..." अधर भीतर चला गया।

भीतर दलान में पहुँचते ही विन्दु खड़ी मिल गई ! उसने को नमस्ते करना चाहा, परन्तु संकोचवश मुँह से शब्द न निकल,

सके, केवल जुड़े हुए दोनों हाथ मस्तक से जा लगे।

अधर ने पुनः स्थिर दृष्टि से देखा। देखकर मुस्कराया और उसके दोनों हाथ अनायास जुड़ गये। उसने पूछा—"ताऊ किस कमरे में हैं....?"

विन्दु मुख से कुछ न बोल सकी। हाथ उठाकर उसने वह कमरा दिखा दिया जिसमें ताऊ नारायण काका से बात कर रहे थे। अधर ने भीतर आकर ताऊ के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया।

"आ गया तू! तू आ गया अधर! मेरे लाल!"—ताऊ हर्ष-गद्गद् शिथिल वाणी में बोले।—"मुझे आशा नहीं थी बेटा कि तुम आओगे। मैंने समझा था कि बिना तुम्हारा मुख देखे ही मैं चल बसूँगा।"

"ताऊ! आप की यह दशा कैसे हो गई?..."कहते-कहते अधर का गला अवरुद्ध हो गया।

ताऊ सिक्त स्वर में बोले—"अधर शोक न कर! जब तू नादान था, तब मैंने तुझे असीम प्यार देकर लिखाया-पढ़ाया—इस आशा से कि मेरे मरने के बाद तू मेरे मार्ग पर चलकर मेरी अधूरी आकांक्षायें पूरी करेगा। मुझे प्रसन्नता है कि तू इस योग्य हो गया है। अब सुख शान्तिपूर्वक इस मायारूपी संसार से मुक्त हो जाना चाहता हूँ मैं..." फिर एकाएक पुकार उठे—"विन्दु बेटी! इधर आ तो...."

बाहर दरवाजे पर खड़ी विन्दु भीतर आकर चुपचाप खड़ी हो गई "देख बेटी! अधर आ गया है। इसे कमरे में ले जा, खिला-पिला! इसका भार अब तुझे ही सम्हालना है।"

एक क्षण के लिए विन्दु के मदभरे नयन अधर के नेत्रों से जा मिले। अधर ने उन सलज्ज नयनों की पुतलियों को पढ़ा, मानों वे उससे कह रही हों—"चलिए।"

दोनों आगे पीछे चल पड़े। दोनों के हृदय तीव्र गति से स्पन्दित

हो रहे थे। गति में अस्थिरता होते हुए भी पैर सावधान थे। कमरे में आकर अधर ने देखा—कमरा खूब सजा हुआ है, चारों ओर की दीवारों पर व्यवस्थित ढंग से टँगे सुन्दर चित्रों ने कमरे की शोभा द्विगुणित कर दी है। अधर को आश्चर्य हुआ कि इसके पहले जब कभी अवकाश मिलने पर वह घर आया था, कमरा इतना सजा हुआ कभी न मिलता था। विन्दु की सुव्यवस्था देखकर अधर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

पहली बार उसने विन्दु के सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल पर गवेषणात्मक दृष्टि डाली। सुन्दरता की उस साक्षात प्रतिमा को देखकर अधर का हृदय अस्थिर सा हो उठा। उफ! ये नयन हैं या मदिरा की प्यालियाँ! कितने उज्जवल!...कितने मादक!....अधर देखता ही रह गया।

विन्दु ने लजाकर अपनी आँखें नीची कर ली।

"कमरे की सजावट तो सराहनीय है।"

विन्दु सहमते-लजाते बोली—"आप अयोग्य को योग्यता की उपाधि देकर शायद गलती कर रहे हैं।"

अधर हँस पड़ा फिर सतर्कता से कमरे की हर एक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखने लगा। देवी-देवताओं के चित्रों के मध्य में स्वयं अपना चित्र टँगा देख, उसे आश्चर्य हुआ। होठों में मुस्कराते हुए उसने पूछा—"यह किसका चित्र है?"

मुस्कराते हुए मृदु स्वर में उसने व्यंग किया—"एक ऐसे व्यक्ति का चित्र है, जिसने जान बूझकर अनजान बनने का प्रयत्न किया है..."

अधर मुँहतोड़ उत्तर पाकर विन्दु का मुख देखता रह गया।

"इस तरह मेरी ओर क्या देख रहे हैं?" लज्जावनत होकर उसने पूछ लिया।

"देख, रहा हूँ कि सुन्दरता के साथ-साथ तुम्हारी बुद्धि भी सुन्दर है, परन्तु एक बात मेरी समझ में नहीं आई..."

"यह क्या ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

यही कि इन देवी-देवताओं के बीच, मेरा चित्र टाँगने का अभिप्राय क्या है ?...और यह क्या ?..." एकाएक अधर की दृष्टि दाहिनी ओर टँगे हुए एक चित्र पर जा पड़ी—"ओह ! तुम्हारा भी चित्र यहाँ उपस्थित है ?"

"जी। एक दिन ताऊ ने फोटोग्राफर बुलाया था ! मेरे लाख अस्वीकार करने पर भी, मुझे फोटो खिचवाने के लिए बाध्य कर दिया था, यह वही फोटो है।" विन्दु सिर नीचा किये हुए ही उपरोक्त बात कह गई।

"चित्र तो अच्छा उतरा है..." अधर ने पुनः विन्दु के चित्र की ओर देखा। बड़ी देर तक देखता रहा।

विन्दु का वह चित्र वास्तव में हृदयग्राही था, अद्भुत रूपराशि का द्योतक था। चित्र के दोनों मदभरे नयन इस प्रकार अधर की ओर देख रहे थे, जैसे उसे संकेत कर रहे हों कि जगत का सारा सौन्दर्य सारा मद, मुझमे ही नीहित है...लूटना चाहो तो लूट लो—पीना चाहो तो पी लो।

विन्दु चुपचाप खड़ी थी ! अधर उसके चित्र की ओर आबद्ध दृष्टि से देख रहा था। उसने हाथ बढ़ाकर वह चित्र उतार लिया। विन्दु ने कहा—"यह क्या ?"

"चित्रों के टाँगने में तुमसे एक भूल हो गई है, उसे ठीक करने जा रहा हूँ"—कहकर अधर ने विन्दु का चित्र अपने चित्र की बायीं ओर टाँग दिया।

विन्दु ने आँखें मूँद ली। हृदय में मधुर स्पन्दन होने लगा। अटकते स्वर में बोली—"यह क्या कर रहे हैं आप ? कोई देख लेगा तो..."

"मेरे अतिरिक्त कोई देखने का साहस नहीं कर सकता ?—" अधर ने कहा—"यह मेरा कमरा है ! इसमें सारी चीजें मेरे मन के अनुसार ही रखी जाएगी !"

अधर के कथन में जो भाव था, उसे समझकर वह लज्जा से हरी हो गई अधर चित्र पर जमे धूल को झाड़कर टाँगता हुआ

बोला—

"चन्द्र की ज्योति से तारेगण प्रोद्भासित हो उठते हैं तरह मेरा चित्र भी अब प्रोद्भासित हो उठा है। ये चित्र ऐसे मालूम पड़ रहें हैं, मानों आकाश मण्डल के दो नक्षत्र पर उतर आये हैं।"

"मैं प्रार्थना करती हूँ, मेरा चित्र वहाँ से हटा दीजिए..." विन्दु संकुचित स्वर में बोली।

"मेरी प्रार्थना है कि उसे वहीं रहने दिया जाय। डाल बिछुड़ गया फूल जिस तरह मुरझा जाता है, उसी तरह मेरी भी वहाँ से हटा देने पर श्रीहीन हो जायगा। यदि तुम चाहती कि श्रीहीन हो जाय, तो कहो मैं हटा दूँ।" और अनायाश ही नेत्र विन्दु के उज्ज्वल नयनों से जा टकराये। इस अप्रत्याशित से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह हताहत स्वर में बोली

"बस रहने भी दीजिये, बहुत प्रशंसा कर चुके...." और के नयन चंचलता से नाच उठे।

"जलपान का कुछ प्रबन्ध है ?"—अधर ने वार्ता का रुख दिया। "हलुआ तो बना था, मगर अब उसकी आवश्यकता रह गई।"

"क्यों-क्यों ?" अधर साश्चर्य बोला।

"क्योंकि आपके सूटकेश में अच्छी से अच्छी मिठाइयाँ हैं, ऊपर तक आ रही है..."

"ओह ! तुम्हरी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र है। जंगलों में रही क्या कुछ दिनों तक ?"—कहकर अधर हंस पड़ा।

विन्दु मुस्करा पड़ी और उसने अधर के सूटकेश से मिठा निकाल कर उसके पास रख दी। अधर ने मिठाई गले के उतार कर पूछा—"तारक का व्यवहार तुम्हारे प्रति कैसा है ?"

"यों तो बाह्य दृष्टि से भले लगते हैं, पर आन्तरिक देखती हूँ तो न जाने क्यों मुझे अच्छे नहीं लगते। कभी-कभी भाव भंगिमा में दुर्भावना की झलक देख, मुझे उनसे घृणा-सी लगती है।"

"परन्तु मुझे तो बहुत अच्छा प्रतीत होता है। कभी-कभ। नादानी कर बैठता है, तो यह उसके उम्र का दोष है..." अधर बोला—"ताऊ भी उससे रुष्ट रहते हैं। क्यों रहते हैं? मेरी समझ में नहीं आता।"

"मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे आप तारक बाबू को अधिक समय तक बाहर रहने के कारण समझ नहीं पाये है। ताऊ वयोवृद्ध हैं। वे मनुष्य को पहचानने में भूल नहीं कर सकते!...वह देखिए, तारक बाबू इधर ही चले आ रहे हैं।"

"वाह अधर भाई! मुझे दरवाजे पर बैठने को कहकर तुम यहाँ गप्पें मारने लगे और मैं वहाँ मक्खी मारता रहा..." तारक ने आते ही व्यंग किया।

व्यंग को अलक्ष्य कर, अधर उसकी बात पर मुस्कराता हुआ बोला—"यहाँ आकर जलपान करने लगा। जाओ तुम भी एकाध चखकर देखो।"

विन्दु को उसका आना अच्छा नहीं लगा। उठकर वह ताऊ के कमरे की ओर चल दी। नारायण काका ताऊ से भेंट कर वापस जा रहे थे! विन्दु ने शिष्टता के नाते पूछ लिया—"जा रहे हैं काका?"

काका ने कान पर हाथ रखा फिर बोले—"बेटी! मैंने कितनी बार कहा कि धीरे से न बोला कर, मैं जरा ऊँचा सुनता हूँ।"

"कहती हूँ कि इतनी जल्दी क्यों जा रहे हैं?' विन्दु ने अपना स्वर ऊँचा किया, फिर भी काका उसकी बात अच्छी तरह न सुन सके और बोल उठे—"हल्दी क्या करेगी बेटी! घर में हल्दी नहीं है क्या? इस साल खेत में भी हल्दी कम हुई है। अच्छा, अभी कलुवा से भेजवा देता हूँ..." कहते हुए काका आगे बढ़ गये।

विन्दु हँसते हुए ताऊ के कमरे में चली गई।

ताऊ की तबियत दिन भर चिन्ताजनक रही। रक्त-वमन जारी था। संध्या समय डाक्टर ने एक इन्जेक्शन दिया, जिससे उन्हें कुछ झपकी-सी लगी, मगर उस झपकी में भी कभी-कभी वे जोरों से बड़बड़ा उठते थे। डाक्टर ने कहा था कि रातभर उन्हें किसी प्रकार

छेड़ा न जाय और न तो जोर से बातचीत ही की जाय, जिससे उनकी निद्रा में विघ्न पड़े ।

एक आदमी का उनके पास होना आवश्यक था, इसलिए विन्दु ने जल्दी से भोजन बनाकर अधर, तारक और नौकर-चाकरों को खिलापिला दिया । अधर भोजनोपरान्त ताऊ के कमरे में चला गया ।

विन्दु थोड़ी देर बाद हाथ में पान का बीड़ा लिए आई और धीरे से अधर से बोली—"पान लीजिए ।"

यद्यपि अधर पान नहीं खाता था, परन्तु विन्दु निराश न हो जाय, इस विचार से पान का बीणा लेकर उसने अपने मुँह में रख लिया ।

विन्दु कुछ क्षण खड़ी रहकर बोली—"आप थके होंगे । जाकर सो रहिए ! मैं ताऊ की देख-रेख कर लूँगी ।"

"यह नहीं हो सकता !..." अधर ने कहा—"तुम आज कई दिनों से पूरी रात जाग रही हो । तुम्हीं जाकर आराम करो..."

"आप मेरी चिन्ता न करें..."

"अब तो चिन्ता करनी होगी..." कहकर वह मुस्कुराया, फिर बोला—"क्यों न हम दोनों ही ताऊ के पास रहें । ताऊ को मैं छोड़ नहीं सकता । न जाने कब क्या हो जाय । उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय होती जा रही है । वह देखो, फिर बड़बड़ाने लगे हैं वे...'

ताऊ नींद में बड़बड़ा रहे थे—"बचाओ ! वह शैतान आकर मुझे मारने का उपक्रम कर रहा है...मेरी दवा में विष मिला रहा है अधर बेटा तू कहाँ है ?...."

घबड़ाकर अधर ताऊ की पलंग की ओर बढ़ा, मगर विन्दु ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—"आप भूल गये, डाक्टर ने उन्हें आराम करने की सलाह दी है ।"

अधर धम्म से कुर्सी पर बैठ गया । हताश वाणी में बोला—"मेरी बीमारी में जिसने रातभर जागकर मेरी सेवा की थी, उसकी बीमारी में मैं उसे छू भी नहीं सकता, कैसा भाग्य परिवर्तन है यह ?"

"अधर ...बेटा....मेरे लाल ?..." ताऊ के मुंह से पुनः

घरघराती हुई आवाज निकली। अधर व्याकुल हो उठा घबड़ा कर बोला—"ताऊ का कष्ट अब मुझसे देखा नहीं जाता···"

"आप भी यदि अधीर हो जायेंगे तो मेरा क्या हाल होगा? ताऊ आज बीमार हैं, कल अच्छे हो जायेगें सदैव यही दशा थोड़े ही रहेगी?"—अल्पायु विन्दु ने ही प्रौढ़ अधर को साँत्वना दी।

अधर और विन्दु आमने-सामने कुर्सियों पर बैठे हुए रात्रि व्यतीत कर रहे थे। यावत् जगत सघन अन्धकार में डूबा हुआ था, परन्तु उन हृदयों को प्रकाश देने के लिए प्रेम का आलोक जागरूक था। अधर के हृदय में भावनाओं का गुबार-सा उठ रहा था और विन्दु की मधुर कल्पनाओं का आश्रय पाकर उनमें डूब-उतरा रहा थी। उसके दो हिरिणी जैसे नयन, कमरे में जलते हुए दीपक की लौ पर स्थिर थे। जिस तरह दीपशिखा कभी प्रज्वलित और कभी मन्द पड़ जाती थी, उसी तरह विन्दु के हृदय का स्पन्दन भी बढ़ घट रहा था।

२

"कोई अच्छी खबर है क्या, काका! बहुत ध्यान से अखबार पढ़ रहे हैं?"

यद्यपि अधर ने काफी जोर से उपरोक्त प्रश्न किया था, फिर भी काका आखिरी बात ठीक से न सुन सके, बोले—"व्यापार में क्या रखा है बेटा..." काका ने अखबार को व्यापार सुना—"हम किसानों के लिए खेती ही सर्वोत्तम है। उत्तम खेती, मध्यम बान···"

"यह कहावत तो बहुत महत्व रखती है, काका!" अधर ने कहा।

"हाँ बेटा, यह कालीदास की उक्ति है, अथर्व वेद तो तूने पढ़ा ही होगा, सब जानता ही होगा?···" काका ने कहा।

अधर, तारक तथा और जितने लोग वहाँ थे, हँस पड़े।

हँसी की आवाज कान में पड़ते ही, क्रोधपूर्ण दृष्टि से उन्होंने ब को देखा। सभी ने सहम कर आँखें नीची कर लीं।

क्रोध शान्त करने के अभिप्राय से अधर ने दूसरा प्रश्न उपस्थित कर दिया—"चीन-जापान का युद्ध का क्या समाचार है, काका ?"

"युद्ध जोरों पर है... मगर इन देशों का चीन और जापान नाम क्यों पड़ा, जानते हो ?"

"चीन और जापान का नाम उसकी उपज पर पड़ा है। चीन में चीनी और जापान में पान अधिक पैदा होता है--क्यों काका ?" अधर के बोलने के पहले ही तारक बोल उठा।

काका चिढ़कर बोले—"इतिहास पढ़ा है कभी ? कि केवल बकबक करना जानता है ?...." कहकर काका पुनः अखबार का तन्मयता से अवलोकन करने लगे।

"देखो काका ! यह कैसा है ?..." अधर ने कमरे में टँगे हुए एक बड़े से शीशे की ओर उँगली उठाकर कहा। उस शीशे को वह अभी-अभी बाजार से खरीद कर लाया था, परन्तु काका ने अखबार से अपनी दृष्टि नहीं हटाई। पढ़ते हुए ही बोले—"क्या कहा ?"

"यह कैसा है !" अधर ने अपनी बात दुहराई।

"पैसा है ! क्या करेगा पैसा तू !..." काका तमतमा कर उठ खड़े हुए—"इतना बड़ा हो गया, पैसा माँगते शर्म नहीं आती ! ...तुम लोग पढ़ने नहीं दोगे, लो मैं चला..." और लाख मना करने पर भी काका उठकर चले ही गये।

"रात को ताऊ की तबीयत कैसी रही, अधर भाई !"—काका के चले जाने पर तारक ने पूछा।

"इंजेक्शन के असर से रात भर उनकी निद्रा नहीं टूटी—अभी प्रातःकाल जगे हैं, मगर अवस्था पूर्ववत है..."

"देखो भाई ! ताऊ की सेवा में कोई त्रुटि न हो...पता नहीं क्यों मुझसे ताऊ घृणा करते हैं, नहीं तो मेरे हृदय में ताऊ की सेवा करने की बड़ी लालसा है, मगर देखना, विन्दु के ऊपर ही सारा कार्य मत छोड़ देना। विन्दु मुझे अच्छी प्रतीत नहीं होती....आप रुष्ट न हों अधर भाई ! मेरा मतलब यह कि जिस दिन से वह आई है, उसी दिन से ताऊ की तबीयत खराब होने लगी—इसमें अवश्य कोई गुप्त रहस्य है...." तारक ने कहा।

"तुम्हारा विचार आधारहीन और मूर्खतापूर्ण है, तारक ! विन्दु दर्पण की तरह स्वच्छ और निर्मल है, उसके प्रति कोई भी अशुभ बात भविष्य में कहने की हिम्मत न करना..."

"नहीं करूंगा, परन्तु..." तारक शरारत भरी आँखों से अधर की ओर देखता हुआ बोला "प्रेम आँखों पर नशीला परदा डालकर बुद्धि कुण्ठित कर देता है। ऐसी अवस्था में सोच समझ कर कदम बढ़ाना ही बुद्धिमानी है। तुम विन्दु को अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो—"

तारक की इस नीच प्रकृति पर अधर तिलमिला उठा। उसने रोषभरे नेत्रों से तारक की ओर देखा।

"नादानी हुई। क्षमा करना..." कहकर तारक उठ खड़ा हुआ और शीघ्रता से बाहर चला गया !

* * * *

बगीचे से सुन्दर विकसित पुष्प लाकर, विन्दु यत्न से माला गूंथ रही थी। गूंथ कर उसने पुष्पमाला पर पानी का छींटा दिया। अर्ध विकसित कलियाँ ठण्डे जल का स्पर्श पाकर प्रस्फुटित हो गईं। विन्दु के गोरे-गोरे हाथ का सम्पर्क पाकर वह सुगन्धित पुष्पमाला और भी सुगन्धित हो उठी।

धड़कते हृदय और कम्पित करों से पुष्पमाला पकड़े हुए वह अधर के कमरे में आई, उसके चित्र के सामने पहुँचकर उसने हाथ ऊपर उठाया। क्षण के लिए उसकी आँखें आनन्दातिरेक से ढँप गईं।

द्वार पर खड़ा अधर विन्दु की यह क्रिया देख रहा था। ज्यों ही विन्दु ने पुष्पमाला ऊँची की, दबे पाँव अधर चित्र के आगे आकर खड़ा हो गया। विन्दु के नेत्र बन्द थे ! अधर का आना वह नहीं देख सकी थी। वह तो न जाने किस मधुर स्वप्न में आनन्द-विभोर थी ! काँपते हुए हाथों से माला पहनाकर उसने आँखें खोलीं तो वह आश्चर्य चकित रह गई। चित्र के स्थान पर पुष्पमाला अधर के गले में पड़ी थी। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। उसके काँपते हुए होंठों से हठात् निकल पड़ा—"आप !..."

क्रोध शान्त करने के अभिप्राय से अधर ने दूसरा प्रश्न उपस्थित कर दिया—"चीन-जापान का युद्ध का क्या समाचार है, काका ?"

"युद्ध जोरों पर है...मगर इन देशों का चीन और जापान नाम क्यों पड़ा, जानते हो ?"

"चीन और जापान का नाम उसकी उपज पर पड़ा है। चीन में चीनी और जापान में पान अधिक पैदा होता है—क्यों काका ?" अधर के बोलने के पहले ही तारक बोल उठा।

काका चिढ़कर बोले—"इतिहास पढ़ा है कभी ? कि केवल बकबक करना जानता है ?...." कहकर काका पुनः अखबार का तन्मयता से अवलोकन करने लगे।

"देखो काका ! यह कैसा है ?..." अधर ने कमरे में टँगे हुए एक बड़े से शीशे की ओर उँगली उठाकर कहा। उस शीशे को वह अभी-अभी बाजार से खरीद कर लाया था, परन्तु काका ने अखबार से अपनी दृष्टि नहीं हटाई। पढ़ते हुए ही बोले—"क्या कहा ?"

"यह कैसा है !" अधर ने अपनी बात दुहराई।

"पैसा है ! क्या करेगा पैसा तू !..." काका तमतमा कर उठ खड़े हुए—"इतना बड़ा हो गया, पैसा माँगते शर्म नहीं आती ! ...तुम लोग पढ़ने नहीं दोगे, लो मैं चला..." और लाख मना करने पर भी काका उठकर चले ही गये।

"रात को ताऊ की तबीयत कैसी रही, अधर भाई !"—काका के चले जाने पर तारक ने पूछा।

"इंजेक्शन के असर से रात भर उनकी निद्रा नहीं टूटी—अभी प्रातःकाल जगे हैं, मगर अवस्था पूर्ववत है..."

"देखो भाई ! ताऊ की सेवा में कोई त्रुटि न हो...पता नहीं क्यों मुझसे ताऊ घृणा करते हैं, नहीं तो मेरे हृदय में ताऊ की सेवा करने की बड़ी लालसा है, मगर देखना, विन्दु के ऊपर ही सारा कार्य मत छोड़ देना। विन्दु मुझे अच्छी प्रतीत नहीं होती....आप रुष्ट न हों अधर भाई ! मेरा मतलब यह कि जिस दिन से वह आई है, उसी दिन से ताऊ की तबीयत खराब होने लगी—इसमें अवश्य कोई गुप्त रहस्य है...." तारक ने कहा।

"तुम्हारा विचार आधारहीन और मूर्खतापूर्ण है, तारक ! विन्दु दर्पण की तरह स्वच्छ और निर्मल है. उसके प्रति कोई भी अशुभ बात भविष्य में कहने की हिम्मत न करना..."

"नहीं करूंगा, परन्तु..." तारक शरारत भरी आँखों से अधर की ओर देखता हुआ बोला "प्रेम आँखों पर नशीला परदा डालकर बुद्धि कुण्ठित कर देता है। ऐसी अवस्था में सोच समझ कर कदम बढ़ाना ही बुद्धिमानी है। तुम विन्दु को अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो—"

तारक की इस नीच प्रकृति पर अधर तिलमिला उठा। उसने रोषभरे नेत्रों से तारक की ओर देखा।

"नादानी हुई। क्षमा करना..." कहकर तारक उठ खड़ा हुआ और शीघ्रता से बाहर चला गया !

* * * *

बगीचे से सुन्दर विकसित पुष्प लाकर, विन्दु यत्न से माला गूँथ रही थी। गूँथ कर उसने पुष्पमाला पर पानी का छींटा दिया। अर्ध विकसित कलियाँ ठण्डे जल का स्पर्श पाकर प्रस्फुटित हो गईं। विन्दु के गोरे-गोरे हाथ का सम्पर्क पाकर वह सुगन्धित पुष्पमाला और भी सुगन्धित हो उठी।

धड़कते हृदय और कम्पित करों से पुष्पमाला पकड़े हुए वह अधर के कमरे में आई, उसके चित्र के सामने पहुँचकर उसने हाथ ऊपर उठाया। क्षण के लिए उसकी आँखें आनन्दातिरेक से ढँप गईं।

द्वार पर खड़ा अधर विन्दु की यह क्रिया देख रहा था। ज्यों ही विन्दु ने पुष्पमाला ऊँची की, दबे पाँव अधर चित्र के आगे आकर खड़ा हो गया। विन्दु के नेत्र बन्द थे ! अधर का आना वह नहीं देख सकी थी। वह तो न जाने किस मधुर स्वप्न में आनन्द-विभोर थी ! काँपते हुए हाथों से माला पहनाकर उसने आँखें खोलीं तो वह आश्चर्य चकित रह गई। चित्र के स्थान पर पुष्पमाला अधर के गले में पड़ी थी। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया। उसके कांपते हुए होंठों से हठात् निकल पड़ा—"आप !..."

"जीवित मनुष्य के रहते, जड़-चित्र के गले में पुष्पमाला पहनाना अवश्य कोई गूढ़ मतलब रखता है। बता सकती हो, जड़ चेतन दोनों में से कौन अधिक प्रिय है, तुम्हें ?" मुस्कराते हुए अधर ने पूछा।

"मैं तो अपने चित्र को माला पहनाने जा रही थी..." बिन्दु ने बहाना किया।

"अपने ही चित्र की पूजा अनादृश्य और अद्भुत बात है।" कहकर अधर हँस पड़ा जोरों से।

बिन्दु दोनों हथेलियों में मुँह छिपाकर भाग गई।

रात को भोजन करते समय अधर की आँखें कड़ आई थीं, क्योंकि आज वह दो दिनों से सारी रात जागता रहा। देखकर बिन्दु बोली—"आप की आँखें लाल हैं! आज आप जाकर सो रहें। मैं ताऊ के पास रहूँगी!"

"तुम अकेले उन्हें नहीं सम्हाल सकोगी ?"

"आप चिन्ता न करें। आपकी अनुपस्थिति में, मैं ही तो अकेली देख-भाल किया करती थी..." बिन्दु ने कहा।

अधर बिन्दु की बात टाल न सका। भोजन समाप्त कर अपने कमरे में आया और आराम कुर्सी से उठंग गया। उठंग कर सोचने लगा अपनी बात, बिन्दु की बात एवं दोनों के हृदय में उत्पन्न होते हुए प्रबल आकर्षण की बात!...तो क्या वह बिन्दु को प्यार करने लगा है ?....जरूर करने लगा है, मगर किस मुख से कहूँगा कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!....मुख से नहीं तो लेखनी द्वारा अपनी आन्तरिक भावना प्रकट करूँगा...!

मेज पर से कागज पेन्सिल लेकर, वह अभी दो-तीन अक्षर ही लिख पाया था कि उसे झपकी आने लगी ..और शीघ्र ही वह नींद में सो गया। कागज पेंसिल उसके सीने पर निश्चेष्ट पड़ी रही।

बिन्दु पान के दो बीड़े लिए हुए अधर के कमरे में आई। देखा, वह आराम कुर्सी पर लेटा है। कागज पेंसिल सीने पर बेजान पड़ी है। उत्सुकतापूर्वक वह दबे पाँव आराम कुर्सी के पीछे जा

खड़ी हुई।

अकस्मात उसकी दृष्टि कागज पर की लिखावट पर जा पड़ी। उस पर केवल दो ही शब्द लिखे थे, परन्तु उन्हें देखते ही विन्दु सिहर उठी—तो क्या सचमुच वे मुझे प्यार करते हैं?....

उस कागज पर केवल इतना ही लिखा था—प्यारी विन्दु!

अधर की निद्रा सहसा भंग हो गई। विन्दु को खड़ी देख उसने तुरन्त वह कागज मोड़कर जेब में रख लिया। विन्दु हँसकर बोली—"मैंने उसे देख लिया है।"

"तुमने..." विन्दु के मुक्त हास्य में अधर की आगे की बात डूब गई।

"जी, मैंने देख लिया है..." विन्दु ने बात पूरी की—"परन्तु इसमें घबड़ाने का तो कोई कारण मैं नहीं देखती। ये दो शब्द बहुत ही प्रिय और आत्मीयता के प्रतीक हैं...मैं बहुत खुश हूँ..." कहकर वह सिर पर पैर रख, भाग खड़ी हुई। अधर भौचक-सा ताकता रह गया।

अर्द्धरात्रि में घबड़ाई हुई विन्दु अधर के कमरे में पहुँचकर बोली—"जल्दी उठिये..."

"क्या है!...है क्या..." कहता हुआ अधर घबड़ाकर पलंग पर से उठकर खड़ा हो गया।

"ताऊ की तबियत बहुत खराब हो गई है..." वह हाँफते-हाँफते बोली—"कोई आशा नहीं उनकी! आपको वे इसी समय बुला रहे हैं।"

"चलो!..." झपटता हुआ अधर ताऊ के कमरे में आया। ताऊ की अवस्था देखते ही उसका हृदय हाहाकार कर उठा। वह ताऊ के शरीर पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा और चिल्ला उठा—"ताऊ! मेरे ताऊ!"

उसकी आवाज कान में पड़ते ही ताऊ में जैसे नवजीवन का संचार हुआ। उन्होंने एक क्षण के लिए अपनी आँखें खोलीं। बोले—"अधर बेटा! जीवन-शक्ति शेष हो चली है। मुझे बुलाने के लिए यमदूत आ गये हैं, वह देखो..."

'मैं नहीं जाने दूँगा तुम्हें, ताऊ !" दृढ़ता के साथ किन्तु करुण स्वर में बोले अधर।

"जाना ही होगा बेटा...आह !...बोला नहीं जाता..." ताऊ के मुँह से खून का फौव्वारा सा छूटा, विस्तर रक्त से लाल हो उठा। थोड़ा विश्राम लेकर वे पुनः बोले—"बेटा ! सोलह वर्ष पहले मैंने तुझे अनाथ रूप में पाया था। वह दिन रह रहकर मेरे नेत्रों के सामने साकार हो उठता है...आह ! आजतक मैंने यह कभी अनुभव नहीं किया था कि तू मेरा बेटा नहीं। मैं धनवान जरूर हूँ, मगर यह धन गरीबों का है। चाहता हूँ, यह गरीबों में ही व्यय किया जाय। कभी किसी दीन दुखियों का जी न दुखाना। रामनाथ सालोसिटर के पास वसीयननामा और एक पत्र तुम्हारे नाम का रखा है, उसे जाकर ले लेना..."

"ताऊ..." अधर चीख उठा।

"विन्दु ! इधर तो आ बेटा !..." विन्दु ताऊ के पास आई "तू देवी है, विन्दु ! मैं तेरे लिए कुछ न कर सका...अधर ! मैं अपनी इस अन्तिम थाती को तुझे सौंपता हूँ। इसे दुख न देना ! किसी प्रकार का कष्ट न हो इसे। जिस बात से यह प्रसन्न रहे, वही करना। यह तेरे अकेलेपन को दूर करेगी और तारक से होशियार रहना....महाधुर्त, लम्पट और कपटी है...."अभी पूरी बात कह भी न पाये थे कि ताऊ को एक दीर्घ हिचकी आई और आँखें उलट गईं।

"हाय !...ताऊ !"कहते हुए विन्दु पछाड़ खाकर गिर पड़ी और चेतनाहीन हो गई। अधर ने उसे गोद में उठा लिया और धीरे से लाकर पलंग पर लिटा दिया। स्वयं पैताने बैठ गया। ताऊ का महाप्रयाण देख कर उसका हृदय हाहाकार कर उठा था। उसने देखा—मृतक ताऊ के मुख पर अब भी वही प्रभा वही तेज विराजमान है।

"हाय ताऊ !..." कहता हुआ अधर भी विन्दु की छाती पर लुढ़क पड़ा।

* * * *

आधी रात हो जाने पर भी तारक की आँखों में नींद नहीं आयी थी। वह अपने कमरे में बैठा हुआ रामू से कह रहा था—

"तुम नहीं समझ सकते। मैंने सब कुछ अपनी आँखों से देखा है! इस षड्यन्त्र में स्वयं अधर सम्मिलित है—"

"ऐसा न कहो तारक बाबू! नहीं तो पृथ्वी फट जायगी, आकाश टूट पड़ेगा। अधर बाबू का ताऊ पर असीम प्यार था। उस असीम प्यार को ठोकर मारकर वे विश्वासघात करेंगे, उनकी जान लेने का प्रयत्न करेंगे, यह सत्य को झुठलाना है..." रामू अविश्वास युक्त वाणी में बोला।

"यह संसार छलनामय है, रामू! आँख रहते हुए अन्धे न बनो मस्तिष्क से काम लो—क्यों इस कार्य में स्वयं अधर का भी हाथ है, जानते हो?....नहीं जानते तो सुनो, अधर को भय था कि कहीं ताऊ सारी सम्पत्ति मुझे न सौंप जायँ....और यह क्या? भीतर से अधर और विन्दु की चित्कार! कदाचित् ताऊ की तबियत ज्यादा खराब हो गई, तुम यहीं ठहरो? मैं भीतर जाकर देखता हूँ..." तारक उठकर ताऊ के कमरे में आया। देखा पलंग पर ताऊ मृत पड़े हैं। दूसरे कमरे में पलंग पर विन्दु के सीने पर अधर पड़ा है।

"यह क्या?..उधर ताऊ की सांस टूट रही थी और इधर यह घृणित कृत्य हो रहा है!"

वह बड़बड़ाया और उसकी आँखें तप्त लोहे के समान लाल हो उठीं। क्रोध से शरीर कांपने लगा। निर्दयतापूर्वक उसने दोनों को झकझोर दिया। दोनों हड़बड़ा कर उठ बैठे।

तारक को देख अधर जोरों से रो पड़ा—"तारक ताऊ चल बसे ....."

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ..." तारक के मुख पर घृणा की ज्वलन्त रेखा उभर आई—"मगर मैं जानना तो यह चाहता हूँ कि ताऊ के मरते ही ऐसी क्या जल्दी थी कि तुम दोनों इस प्रकार के घृणित कार्य में लिप्त हो गये?"

"तारक!" अधर का स्वर कठोर हो गया।

"अधर भाई!" तारक भी कठोर वाणी में बोला—"आँखों

देखी बात पर परदा डालने का प्रयत्न न करो। ताऊ के मृत्यु पीछे जो भीषण रहस्य है वह मुझसे अविदित नहीं ? मैं सब समझ गया हूँ !"

अधर पहले से भी अधिक कठोर स्वर में बोला—"तारक अपनी जबान को बहकने न दो, मुझे कठोर बनने का अवसर दो, तुम्हारी जबान की तीक्ष्णता ही तुम्हारे मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती रही है—ताऊ तुम्हारी इसी नादानी पर रुष्ट आये थे..."

एकाएक तारक का आवेश विलीन हो गया। न जाने क्या कर वह संयत वाणी में बोला—"बात यह है कि मैं जो कुछ देखता हूँ उसी के अनुसार अपना विचार स्थिर कर लेता हूँ। हो सकता है भूल कर रहा होऊँ। तुम क्षमा करना, अधर भाई ! अल्पज्ञ हूँ मैं..."

प्रातःकाल होते हीं ताऊ की मृत्यु का समाचार शहर भर फैल गया। मिर्जापुर के सबसे बड़े रईस, जमींदार एवं परोपकारी व्यक्ति का देहावसान का समाचार पाकर सभी सन्तप्त हो उठे थे। शहर के बड़े-बड़े धनाड्य एवं अधिकारीगण, शोकाकुल परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करने को एकत्र हुए।

एक दिन जो अंजुली भर-भर कर गरीबों में रुपया लुटाता था, उसके मृत शरीर के सम्मानार्थ सभी उपस्थित हुए, मगर उसके देहावसान से जों क्षति हुई थी, वह क्या कभी पूरी हो सकती थी ?

३

"आज तक आपने जमींदारी का काम बड़ी योग्यतापूर्वक सम्हाला इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, मगर अब हमें आपकी आवश्यकता नहीं रही !"—तारक ने कहा।

"क्यों तारक बाबू ! मुझसे कोई अपराध हो गया हैं क्या ?"—जमींदारी का मैनेजर बोला।

"चपरास क्या करोगे भाई ?—" काका भी वहीं बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे। कुछ बातें सीधी उल्टी उनके कानों में भी पड़

गई थी, यही कारण था कि वे अखबार पर दृष्टि गड़ाये हुए बोल उठे थे—"तुम तो मैनेजर हो ! चपरास तो चपरासी बांधा करते हैं !...." वास्तव में काका ने 'अपराध को 'चपरास' सुना था।

काका की बात पर तनिक भी ध्यान न देकर, वृद्ध मैनेजर दयनीय स्वर में बोला—"जीवन के तीन युग, मैंने इस परिवार की सेवा करते हुए व्यतीत किये अब इस चौथे युग में किसकी शरण जाऊँगा ?"

"मैं विवश हूँ—" तारक कहने लगा—"अब मैं जमींदारों के मैनेजमेण्ट के लिए कोई योग्य और अनुभवी ग्रेजुएट ढूढूँगा !"

"क्या छोटे सरकार भी यहीं चाहते हैं ?"

तारक ने व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए कहा—"मैनेजर ! आज से यह जान लो कि इस जमींदारी के मालिक वे नहीं, मैं हूँ। अब मेरी आज्ञा प्रसारित होगी और उसका पालन होगा...!" तारक गर्वमिश्रित स्वर में कहा।

"मगर ताऊ सारी जमीन मेरे नाम बसीयत कर गये हैं...!" अधर ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा।

"असत्य ! ताउ की अकस्मित मृत्यु हुई है। जहाँ तक मेरा विश्वास है, उन्होंने बसीयत नहीं किया है मैं उनका सम्बन्धी हूँ और तुम हो अनाथ ! यह सारी जमींदारी मेरी है।" तारक के मुख से जैसे पिशाच बोल रहा था।

'रामनाथ सालीसिटर के पास वसीयतनामा रखा है, अच्छा हो उसे देखकर अपने अधिकार का निर्णय कर लो !..." अधर ने पुनः उसकी उदण्डता पर ध्यान न देते हुए कहा।

अधर की यह बात सुनकर तारक झल्ला उठा। उसने कर्कश आवाज में रामू को ताँगे वाले को बुलाने की आज्ञा दी।

रामू झटपट उसी ताँगे वाले को बुला लाया, जिस पर पहले दिन अधर आया था। गाँव में ही उसका घर था। अधर और तारक ताँगे पर बैठ गये। ताँगे वाले ने घोड़े को चाबुक मारी। घोड़ा दौड़ चला। ताँगे वाला गुनगुनाने लगा—"कहि दे बलमुआ से, हमें लिए जायँ, राजा हमें लिए जायँ।"

थोड़ी ही देर में तांगा रामनाथ सालीसिटर के दरवाजे पर पहुंचा। वे कुर्सी पर बैठे हुए चाय पी रहे थे। अधर और तारक देखकर वे उठ खड़े हुए और बोले—

"आइये छोटे सरकार!...उन्होंने अधर से कहा।

"बैठने पूर्व मैं यह जानना चाहता हूँ, सालीसिटर साहब!.. तारक ने कहा—"कि वास्तव में छोटे सरकार कहलाने का अ अब कौन है—अधर या मैं?"

"मुझे दुख के साथ कहना पड़ता है तारक बाबू..."सा लोला—"ताऊ के उत्तराधिकारी अधर कुमार हैं। यह देखिये.. और सालीसिटर ने आलमारी में से एक गोलाकार लपेटा हुआ क निकाल कर तारक के हाथ में दिया।

पढ़ लेने के पश्चात वह बोला—"मैं देखता हूँ कि जाल अच्छी तरह बिछाया गया है। ताऊ की जान ले ली गई। अब वसीयतनामें का जाल रचा गया है..." तारक क्रोधावेश में गया।

"जबान पर काबू रखिये, तारक बाबू! मेरे समक्ष आप साधारण व्यक्ति हैं। छोटे सरकार की प्रतिष्ठा पर कीचड़ के प्रयत्न में आप स्वयं अपने उछाले कीचड़ में धँस जायेंगे। देखिये, वसीयतनामे में साफ लिखा हुआ है कि यदि आप छोटे के साथ रहना चाहे तो आपको सौ रुपये प्रतिमाह और हवेली बाहरी कमरा रहने के लिए दे दिया जाय।"

तारक पर जैसे तुषारपात हुआ। दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए पर बैठ गया वह। कुछ क्षण तक न जाने क्या सोचता रहा, एकाएक बोल उठा...."मैं भूल पर भूल करता जा रहा हूँ और होने पर भी क्षमा पाता जा रहा हूँ। इस बार भी क्षमाप्राथी अधर भाई। मैं मूर्ख हूँ, तभी तो मूर्खता करने से बाज नहीं आता.. और तारक ने झुककर अधर के पैर पकड़ लिए।

• • • •

पसरहट्टा जहाँ वेश्यायें ही अधिकतर रहती हैं, रात्रि के स्वर्ग का द्वार बन जाता है। कोठों पर तबलों की थाप,

की झनकार एवं घुंघरुओं की छुमछननन से, आने जानें वालों के नेत्र बरबस ही ऊपर उठ जाते हैं। रूप का सौदा करने के लिए कितने ही अविवेकी व्यक्ति सरपट दौड़ पड़ते हैं। शराब की नदी बहती है, लक्ष्मी उदार बन जाती हैं, रुपयों का कोई मूल्य नहीं रह जाता। गरीबों असहायों का रक्त चूस-चूस कर धन एकत्र करने वाले सेठ साहूकार, रात्रि की कालिमा में इन विषाक्त नागिनों के माया-जाल में फंसकर, किस प्रकार पानी की तरह रुपया बहाते हैं, किस प्रकार ब्राण्डी के बोतलों में डूबकर मानवता की हत्या करते हैं—यह सोचने की बात है। दिन के उज्वल प्रकाश में दूध के धोये हमारे समाज के ये कर्णधार, रात्रि की भयानक अँधियारी में क्या-क्या कर्म नहीं करते ?

'हिना' के यहाँ महफिल जमी है! गावतकिये के सहारे गद्दी पर बैठी वह गा रही है। कई मनचले युवक रईस उपस्थित हैं। सुरा की प्यालियाँ पर प्यालियाँ रिक्त हो रही हैं। लोग अपना हृदय और मस्तिष्क खोकर झूम रहे हैं।

'हिना' का गाना अभी समाप्त नहीं हुआ था कि नौकरानी ने आकर संकेत से एक बाबू के आने की सूचना दी। उसने भी संकेत में ही आदेश दे दिया।

वह चली गई और दूसरे ही क्षण आगन्तुक आ उपस्थित हुआ।

"आइये तारक बाबू! बहुत दिनों पर तसरीफ लाये...." हिना ने गाना बन्द करते हुए आगन्तुक से कहा। आगन्तुक तारक ही था, मगर इस समय उसकी विचित्र ही दशा हो रही थी।

हिना ने पहले से आये हुए लोगों को एक आवश्यक का का बहाना कर विदा कर दिया।

उन आँख के अन्धों के जाने के बाद, तारक बोला—"सब चौपट हो गया। लहलहाती आशाओं पर तुषारापात हो गया, वज्रपात हो गया।

"आखिर हुआ क्या ?..." आतुर एवं आश्चर्यमिश्रित स्वर से हिना ने पूछा।

"उस बूढ़े खूटस ने सारी सम्पत्ति और जमींदारी का वसीयतनामा अधर के नाम लिख दिया है अब वही मालिक हैं, छोटे सरकार है। जिसे देखो वही छोटे सरकार की सेवा में उपस्थित रहता है...मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। सोचा था कि हमारे दिन अब शीघ्र ही फिरेंगें और तब हम तुम राजा-रानी की तरह जीवन व्यतीत करेंगे मगर वे सुखद स्वप्न, स्वप्नवत विलीन हो गये..." तारक ने अत्यन्त कृतिम दुखपूर्ण मुद्रा बनाकर, सब कुछ कह दिया।

"आपकी तबीयत कुछ खराब मालूम होती है..." कहती हुई हिना ने आलमारी से बोतल निकालकर प्याला भरा और तारक के हाथों में पकड़ा दिया। प्याले का सारा हलाहल गले के नीचे उतार कर तारक बड़बड़ाया—"देखूँगा कि कब तक यह अधर कुमार छोटे सरकार बनकर ऐश करता है...." कहते हैं कि मदिरा हृदय को शान्ति प्रदान करने वाला पेय है। परन्तु...! इसके पीते ही मनुष्य में आसुरी प्रवृत्ति जाग्रत हो उठती है! वह अपना बुरा-भला, उचित-अनुचित, हानि-लाभ ज्ञान-अज्ञान विस्मृत कर, बदहोश बन जाता है!....क्या यही है सोमरस?

४

"तारक बाबू का नशा उतरा नहीं?..." बिन्दु ने पूछा।

"उतर चुका है! पहले तो उसे मैं भला आदमी समझता था, परन्तु ताऊ के मरते ही उसने ऐसा रंग बदला कि...खैर कोई बात नहीं मैं समझाऊँगा उसे।" अधर ने कहा।

"वसीयतनामा कहाँ है? मुझे दिखा सकते हैं?" कहती हुई बिन्दु के चंचल नेत्र, याचनात्मक भंगिमा से अधर के नेत्रों से जा मिले।

"क्यों नहीं?....अधर ने कहा और जेब से वसीयतनामा निकाल कर बिन्दु के हाथ पर रख दिया! वह पढ़कर बोली—'तारक बाबू को १००) प्रति माह और हवेली के बाहर वाला कमरा—बस, इतना ही प्रदान किया गया है उन्हें!"

"मैं तारक को अपनी ओर से सौ रुपया माहवार अधिक दे दूंगा—बेचारे की सूरत देखकर मुझे दया आती है। जिस समय उसने वसीयतनामा पढ़ा, उसपर जैसे घड़ों पानी पड़ गया था..."

"यह धन गरीबों का है और गरीबों के ही हितार्थ में व्यय किया जाना चाहिये—आप तो केवल आधार स्तम्भ हैं, फिर आपको क्या अधिकार है कि तारक बाबू को सौ रुपया अधिक दें ?"

"अच्छा इस पर बाद में विचार किया जायगा, इस समय तो मैं एक आवश्यक कार्य में तुमसे परामर्श करने आया हूं।"

"कौन-सा कार्य है वह ?" बिन्दु ने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा।

"मरने से कुछ समय पहले ताऊ ने यह वसीयतनामा लिखकर सालिसिटर के पास रक्खा था और उन्होंने मेरे नाम का एक पत्र भी दिया था, ताकि उनके मरने के पश्चात् वह पत्र भी मुझे दे दिया जाय। आज सालीसिटर ने वसीयतनामा के साथ वह पत्र भी मुझे दिया है !"

"उसमें क्या कोई विशेष बात है ?"

"तुम स्वयं पढ़ सकती हो।" अधर ने पत्र बिन्दु के हाथों पर रख दिया ! बिन्दु पढ़ने लगी—

आगामी के आधार स्तम्भ, अधर !

"कौन जानता है, इस दुनिया से नाता तोड़ते समय तुम्हें देख भी सकूंगा या नहीं। तुम जानते होगे कि स्वर्गीय सुधा की एक बिन्दु हमारे घर आ गई है, यद्यपि उसे आये अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, तथापि मैंने इन थोड़े ही दिनों में उसे कसौटी पर अच्छी तरह कस कर परख लिया है। तुम्हारी सूरत उसने अभी नहीं देखी है तुम कालेज में ही हो, परन्तु उसे तुम्हारे चित्र पर पुष्पमाला चढ़ाते हुए मैंने स्वयं अपनी वृद्ध आँखों से देखा है यदि तुम्हारे कालेज से लौटने के पहले ही मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरी एक बात याद रखना। मुझ वृद्ध की अन्तिम धरोहर, इस बिन्दु को अपने से अलग न करना। तुम दोनों ऐसे बन्धन में बँध जाना कि संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें पृथक न कर सके...."

विन्दु ने लज्जा से अपनी आँखें मूँद ली।

"क्या राय है तुम्हारी ?..." अधर स्मित करते हुए पूछा।

विन्दु के नयन स्वमेव खुल गये और अधर की आँखों से मिले, मानों वे कह रही हों—"मैं तुम्हारी ही हूँ।"

"क्या कहती हो ?...." अधर ने पुनः प्रश्न किया।

"मैं क्या कहूँ ? आप बहुत वैसे हैं कुछ भी नहीं समझते !... कहती हुई विन्दु भागने लगी तो अधर ने लपक कर उसका पकड़ लिया।

दोनों के शरीर में विद्युत रेखा सी दौड़ गई। रोम-रोम नस में स्फुरण होने लगी। क्षणभर दोनों, एक दूसरे की आँखों देखते हुए मूक खड़े रहे !

एकाएक अधर की चेतना लौटी तो उसके मुख से निकल पड़ा "विन्दु..."

"कहिये...." प्रेमासिक्त स्वर में विन्दु बोली।

"ताऊ के अन्तिम आदेश की पूर्ति तो होनी ही चाहिये।"

"यह आप के समझने की बात है।"

"और तुम्हारे ?..."

"मैं क्या जानूँ ..."लज्जा से भीगे स्वर में उसने कह दिया।

"देखो विन्दु ! मनुष्य का जीवन नीरस है, यदि उसे कोई जीव साथी मिल जाय, तो उनके जीवन में सरसता आ जाती है तब वह अपनी जीवन नैया हँसी-खुशी से पार लगा लेता है। तक तो मैं आधारहीन था, परन्तु अब ताऊ ने अगाध सागर निर्भय कूद पड़ने की पतवार दे दी है ...आओ, हम तुम आज कार होकर उस पतवार को दृढ़ता प्रदान करें...."

"क्षमा करना अधर भाई..." तारक ने एकाएक वहाँ उनके प्रेम-मिलन में बाँधा उपस्थित कर दी—"मुझे दुःख है कि तुम लोगों के सुखद सम्भाषण में विघ्न-स्वरूप आ खड़ा हुआ। कार्य आवश्यक है। मैनेजर साहब आये हैं। कह रहे हैं कि पार के खेतों में उपज नहीं हो पाई है। किसान लगान देने में असमर्थ हैं। इस विषय में तुम्हारी क्या राय है ?"

"लगान आंशिक रूप में भी वसूल नहीं हुआ ?" अधर ने पूछा।

"नहीं, आशा भी नहीं है। कोड़े लगाकर वसूल किये बिना, एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी..." तारक ने कहा।

"मैनेजर से कह दो, इस साल की सारी लगान माफ कर दी जाय—किसी को कष्ट हो तो उसे अतिरिक्त सहायता भी दी जाय..."

"जमींदारी लुटाने से काम नहीं चलेगा अधर भाई..." तारक के मुख पर उसकी मूर्खता मूर्त हो उठी।

"तुम जाओ।" अधर ने क्रूर स्वर में कहा!

तारक पर उसके क्रुद्ध स्वर की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। विन्दु की आँखों में अपना तीक्ष्ण आँखें डालकर व्यंगात्मक स्वर में वह बोला—

"अधिक भोजन करने से अपच हो जाने का डर रहता है, अधर भाई!..." और तुरन्त कमरे के बाहर हो रहा।

उसका व्यंग अधर और विन्दु के प्रेमालाप पर था।

अधर ने दाँत पीसते हुए विन्दु को उद्देश्य कर कहा—"इस छोकरे की शैतानी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है!"

० ० ० ०

वर्षा प्रारम्भ होते ही 'टांडा फाल' पर अपार भीड़ होती है। यह मनोहर प्रपात मिर्जापुर शहर से दस मील दक्षिण में स्थित है। वर्षाऋतु में अगाध जलराशि लिए सैकड़ों नद-नाले, सामूहिक रूप से एकत्र होकर विशाल नदी का रूप धारण करते हैं और आगे चलकर एक विशाल प्रपात में परिवर्तित हो जाते हैं।

मीलों दूर रहिये फिर भी आपको प्रपात का मधुर निनाद सुनाई देगा। फर्लाङ्ग भर पीछे रहिये, फिर भी प्रपात के श्वेत जलकण आपका आलिंगन कर शीतलता प्रदान करेंगे! मिर्जापुर के रईस, पढे-लिखे अपढ़ सभी वर्षा के दिनों में टांडा फाल जाकर भाँग छानने और मौज-मस्ती के वातावरण में विविध मनोरंजन का रसास्वादन करते हैं।

अधर, तारक और उनका नौकर रामू—तीनों प्रातःकाल से ही 'टांडा फाल' आये हुए थे। तारक और रामू मौज मस्ती में डूबे हुए थे। अधर एक चट्टान पर बैठा हुआ अगम जलराशि का कल्लोल देख रहा था। प्रपात का भयानक गर्जन वातावरण को अशान्त बनाये हुए था।

"छोटे सरकार आपसे रुष्ट हैं क्या?..." रामू ने तारक से पूछा।

"होंगे!...मुझे इसकी परवाह नहीं..." तारक ने लापरवाही से कहा—"मगर रामू! आज तक तुमने अधर में कोई खराबी नहीं देखी?"

"नहीं तारक बाबू! छोटे सरकार तो देवता हैं..."

"भ्रम में भ्रमित हो तुम। अरे, यह सारे पापड़ इसी के तो बेले हुए हैं—देखो ना, ताऊ के मरते ही यह सारी जमींदारी का मालिक बन बैठा है..."

"बाबू..." तभी एक भिखारी आकर खड़ा हो गया। अवस्था सत्ताइस के लगभग थी। शरीर से दुबला-पतला, आँखें भीतर को धँसी हुई—दीनता उन आँखों से झाँक रही थी

"क्या है रे?...." तारक की आँखों में क्रोध का भाव झलक आया।

'बाबू! तीन दिनों से भूखा हूँ। कुछ मिल जाय...."

"इतना हट्टा-कट्टा है, काम करते नहीं बनता—"सूअर कहीं का!..." तारक गरज पड़ा।

"मुँह से फूल न बरसाओ, बाबू! अपनी भारी जेब में से एक पैसा दे दोगे तो हलका नहीं हो जायगा!..." भिखारी बोला।

"व्यंग करता है, नालायक!..." कहते हुए तारक ने आगे बढ़कर चट्ट-चट्ट दो तमाचे उस भिखारी के गालों पर जड़ दिये। भिखारी कुछ न बोला। उसके दयनीय नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगे।

"अच्छी भीख दी आपने, बाबू! ईश्वर आपका भला करे..." कहकर वह आगे बढ़ने लगा।

तारक की निर्दयता देख अधर पास आकर बोला—

'क्यों मारा उस गरीब को ? बहुत बहक गये हो तुम !...'

अधर भाई..." तारक की त्योरियाँ चढ़ गईं—"हर बात में झिड़की देना मुझे सह्य न होगा।"

"लो भाई ! ये पैसे लो..." अधर ने तारक की बात पर ध्यान दिये बिना, दो पैसे उस भिखारी के हाथ पर रख दिये।

"उठा लो बाबू ये पैसे ? पान खाने के काम आयेंगे..." भिखारी की आँखें अश्रु प्लावित थीं "यदि चाहो तो दूसरे गाल पर भी और दो चार तमाचे लगा दो। तुमसे अच्छे तो वे गरीब हैं, जो हाथ फैलाने पर कुछ नहीं तो मिट्टी का एक ठोकरा ही रख देते हैं...आप बेश्यालय और मदिरालय में मुक्त हाथों से पैसे लुटा सकते हैं—विलासिता का सामान जुटाने में धन का अपव्यय कर सकते हैं, पर गरीब को दो पैसे देते समय आपकी जेब सदा खाली रहती है.... कैसी विडम्बना है यह ?...."

"शैतान कहीं का !...." तारक ने लपककर भिखारी की गरदन पकड़ ली और उसे सड़क पर दूर ढकेल दिया। उधर से एक मोटर आ रही थी, वह भिखारी उसके नीचे आ रहा। जोरों की एक चीख वायुमण्डल को प्रताड़ित करती हुई क्षितिज के पास जा कर विलीन हो गई।

अधर दौड़कर मोटर के पास पहुँचा। शीघ्रतापूर्वक उस चेतना-शून्य भिखारी को मोटर के नीचे से निकाला देखा उसे चोट अधिक आ गई हैं। वह पूर्णतया संज्ञाहीन था। रामू और अधर ने मिलकर तुरन्त ताँगे पर चढ़ाया और घर की ओर चल पड़े।

घर आकर अधर ने उस भिखारी के इलाज का उचित प्रबन्ध कर दिया। वह तारक के व्यवहार पर बहुत रुष्ट था। वह बड़-बड़ाया—"कितना हृदयहीन है यह तारक !"

कई दिन की निरन्तर परिचर्या से उस भिखारी की अवस्था में कुछ सुधार हुआ। वह धीरे धीरे बात करने लगा था। एक दिन बिन्दु के विशेष आग्रह पर भिखारी आप-बीती सुनाने पर सहमत हुआ। वह कहने लगा—"एक दिन मैं भी ऐश्वर्यशाली था, जगत की सारी माया मेरे पैरों तले लोटती थी। हमारी दुर्दशा का प्रारम्भ

तब से हुआ जब से मेरा छोटा भाई एक मेले में खो गया। तब से क्या-क्या दुःख, क्या-क्या लांछन, ताड़ना नहीं सहे मैंने..."

"तुम्हारा नाम क्या है ?" अधर बीच में ही पूछ बैठा।

"विमल मेरा नाम है, मगर बाबू ! किस जन्म का बदला लिया तुमने ? ..." भिखारी ने यह बात तारक को लक्ष्य करके कही थी। तारक सुनते ही कोई कड़ी बात कहने जा रहा था कि अधर ने उसको सावधान किया—"चुप रहो जी !"

"क्यों चुप रहूँ ?....क्या मैं इतना जलील हूँ कि एक भिखारी भी मेरा अपमान करने का साहस करे...."

"तुम अपने आपको भूलते जा रहे हो, तारक ! ऐसा न हो कि मुझे रामू को आज्ञा देकर तुम्हें बाहर निकलवा देना पड़े..."

"तुम ऐसा कर सकते हो ? परन्तु किस साहस पर ?"

"किस साहस पर यह देखना चाहते हो तुम ?" अधर क्रोध से काँप उठा। आज तक उसने तारक की कितनी ही अव्यवहारिक बातों पर ध्यान नहीं दिया था, परन्तु अब अपने को न रोक सका। उसने खूंटी पर से हण्टर उतार कर तारक की पीठ पर सटाक से दे मारा। वह दर्द से चीख उठा।

"रामू ! इसे कमरे से बाहर कर दो..."

"विमल ! तुम समझते हो कि हम सब धनवान हैं..." अधर उस भिखारी से बोला—"मगर तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हम सब तुम्हारी ही तरह अनाथ हैं। यह हवेली अनाथों का आश्रय-स्थल है। मैं, यह तारक, यह विन्दु—सभी अनाथ हैं, असहाय हैं यदि चाहो तो तुम भी हम अनाथों के साथ रह सकते हो।"

"तुम्हारी कृपा का आभारी हूँ, बाबू ! अगर यहाँ रहकर तुम्हारी कुछ भी सेवा कर सका तो अपने को धन्य समझूँगा !" भिखारी ने कहा !

अधर का हृदय भर आया। उसने भिखारी से हाथ मिलाने लिए अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया तो उसकी कलाई पर पड़ते ही भिखारी एकाएक चौंक पड़ा। अधर की कलाई पर सांप का चित्र गुदा हुआ था। भिखारी एकटक उस सांप की ओर

देखने लगा। न जाने क्या सोचकर उसकी आँखें डबडबा आईं।

"क्या देख रहे हो मेरी कलाई पर ?..." पूछा अधर ने।

"बाबू ! यह साँप बहुत अच्छा गुदा हुआ है, कब गुदवाया था इसको ? " भिखारी ने अगाध उत्सुकता प्रकट करते हुए पूछा।

"मुझे याद नहीं—कदाचित माता-पिता ने लड़कपन में गुदवा दिया होगा !...." अधर ने कहा।

सुनकर भिखारी ने एक लम्बी साँस ली।

"आज से तुम मेरे भाई हुए। मेरे साथ रहकर जमींदारी की देख-रेख करना।" अधर ने कहा।

और इस तरह अब भिखारी विमल और अधर के साथ सुख-पूर्वक रहने लगा। वह बड़ी ही लगन के साथ जमींदारी का कार्य देखता। सभी उससे प्रसन्न रहते, केवल तारक ही उससे जला-भुना रहता। यद्यपि तारक और अधर में उस दिन काफी तनातनी हो गई थी, परन्तु बाद को तारक ने माँफी माँग ली और अधर ने भी नादान समझकर उसे क्षमा कर दिया था।

सारी प्रजा अधर से संतुष्ट थी ताऊ की तरह वह भी दयावान था। दुखियों का तड़पना देखकर, दीनों का अन्तर्नाद सुनकर, वह भी ताऊ की तरह विचलित हो उठता था। एक अन्तर उसके स्वभाव में अवश्य आ गया था। अन्याय का दमन वह शान्ति के साथ करने का विरोधी था। एक छोटा-सा अन्याय देखकर भी उसका हण्टर अन्यायी की पीठ सहला देता था।

विमल और अधर मे, कुछ ही दिनों में प्रगाढ़ मैत्री हो गई। दोनों का स्वभाव एक सा था—रूप-रंग में भी कुछ-कुछ साम्य था—अगर वे दोनों साथ-साथ रहते तो लोगों को उनके भाई-भाई होने का सन्देह हो जाता।

* * *

हरिया गाँव का धोबी था। अवस्था यही तीस के लगभग थी। उसकी एक बहन थी। नाम था सुखिया। निखरती हुई जवानी गाँव के मनचलों के लिए मनोरंजन का साधन थी। जब वह गाँव की पग-दण्डी से जाने लगती तो लुच्चे-लफंगे दो-चार बोली बोल ही देते थे।

गाँव भर के कपड़े हरिया ही धोया करता था। आज भी एक बड़ा सा गट्ठर पीठ पर लादे, वह कजली गाता हुआ घर की ओर जा रहा था। उसका आलाप सुनकर जाने वाले ठिठक कर खड़े हो जाते। हरिया उन्हें देखकर शान से तान खींचता—"कैसे खेले जइबू सावन में कजरिया, बदरिया घिरि आई ननदी—" और झूम-झूम कर गाता हुआ आगे बढ़ जाता।

काका का घर समीप आ जाने पर उसने गाना बदल दिया। कजरी गाना बन्द कर, वह एक भजन गाने लगा, क्योंकि काका भजन अधिक पसन्द करते थे। कजरी से उन्हें बहुत चिढ़ थी। काका अपने दरवाजे पर बैठे हुक्का पी रहे थे।

"क्यों रे ?...." काका अपने हलवाहे पर बिगड़ पड़े—"तमाखू कैसी बनाई है आज ? चोटा इतना कम डाला है कि तमाखू सूखी ही रह गई—जैसे मूरख को पता ही नहीं कि तम्बाखू कैसे बनती है ?"

तभी हरिया गाता हुआ पहुँचा—"राधा ने मोरि बँसिया चुराई अब न जीवों री माई।"

काका गुस्से से भरे बैठे थे। हरिया का गाना सुनकर वे और भी भभक उठे। गाना भी उन्हें ठीक से नहीं सुनाई पड़ा था— "क्यों रे धोबिया ! क्या गाता है ? राधा ने गधिया चुराई अब ना चीपों री माई ! इसके माने है क्या रे ? तेरी गधिया को राधा ने चुरा ली है क्या ?"

हरिया जानता था कि सफाई या उत्तर देने की चेष्टा करने से काका भड़क उठते हैं—अतः चुपके से वह सरक गया।

५

आधी रात व्यतीत हो जाने पर भी, अभी तक अधर की आँखों में नींद नहीं है। कमरे में अकेला वह लेटा हुआ करवटें बदल रहा है। कभी-कभी मुख से एक दीर्घ श्वास निकल कर उसकी अन्तर्वेदना को प्रकट कर देती है। रह-रह कर वह बिन्दु की याद में खो

आता—कितनी सीधी है वह, कितनी भोली है! उसके मदभरे नयन मानों जवानी के अग्रदूत हैं। अलौकिक सुन्दरता एवं अवर्णनीय लोच है उसमें।

कभी तारक के विषय में सोचता—ताऊ के मरने के बाद से वह कितना उच्छृंखल हो गया है! बात करने का सलीका नहीं! बात करेगा तो अकड़ कर—आखिर उसके मन में क्या है? किस बात पर वह इतना उछल-कूद मचाता है?....मेरी नम्रता ही उसकी उच्छृंखलता का कारण तो नहीं?...

अधर ने करवट बदली। फिर चारपाई पर से उठ खड़ा हुआ। खिड़की के पास आकर अन्धकारमय रात्रि में वह आँखें फाड़कर देखने लगा! उसने देखा—प्रकृति निश्चल, निस्तब्ध एवं निश्चेष्ट है। रात्रि की घोर निरवता को भेदता हुआ एक उलूक अपनी कर्कश आवाज में चीख रहा था। दूर पर, कहीं से एक बादल का टुकड़ा आकर नीलाकाश पर कल्लोल कर रहा था।

अनजाने मे दरवाजा खोलकर वह बाहर आया, ध्यानपूर्वक अपने चारों ओर देखा, फिर धीरे-धीरे विन्दु के कमरे की ओर बढ़ चला। पास आकर उसने द्वार पर धीरे से थपकी दी। विन्दु भी जाग रही थी उठकर उसने दरवाजा खोला। उसके मुख से एकाएक निकल पड़ा "आप..."

"नींद नहीं लगी तो सोचा चलकर तुम्हीं से मन बहलाऊं।"

"नींद की कोई दवा ले लीजिए न!..." कहकर विन्दु शोखो से मुस्कुरा पड़ी।

दोनों कमरे में आकर पलंग पर बैठ गये—"मैं उस बात का उत्तर आया हूँ, जिसका ताऊ अपनें पत्र में संकेत कर गये थे?" अधर कहा।

"आप व्यर्थ मुझे परेशान करते हैं...."

"परेशानी में तो तुम्हीं ने मुझे डाल रखा है, विन्दु! बोलो के अन्तिम आदेश की पूर्ति कब होगी?" अधर के नेत्रों में थी।

"जब आप चाहेगें..." बड़ी कठिनता से विन्दु के मुख से ये

शब्द निकल गये।

अधर ने प्रेमावेश में उसे हृदय से लगाकर चूम लिया। वि लाज से दुहरी हो गयी।

उसी समय ताऊ के कमरे में फुसफुसाहट की आवाज सुना पड़ी। अधर चौंक पड़ा और विन्दु भी।

"कैसी फुसफुसाहट है, यह ?...." विन्दु ने शंकित स्व में पूछा।

"मालूम होता है कुछ षड़यन्त्र रचा जा रहा है!..." अध ने कहा—"तुम भीतर से द्वार बन्द कर लो। मैं अपने कमरे रिवाल्वर लेकर देखता हूँ।"

"नहीं नहीं! आप उधर न जाइए..." विन्दु ने अधर क हाथ पकड़ लिया—"या फिर मुझे भी साथ ले चलिये!"

लाचार अधर विन्दु को भी साथ ले अपने कमरे में आया आलमारी से रिवाल्वर निकाल कर दबे पाँव ताऊ के कमरे की ओ बढ़ा। विन्दु भी उसके पीछे-पीछे चली।

"पहले बाहरी दरवाजे की सूराख से चलकर देख लीजिए... विन्दु ने सलाह दी। अधर को विन्दु की सलाह पसन्द आई। दोन ताऊ के कमरे के पिछले भाग में जा पहुँचे। कमरे के भीतर से आदमियो के धीरे-धीरे बात करने की आवाज सुनाई पड़ रही अधर ने बातचीत सुनने का प्रयत्न किया, पर असफल रहा। में उसने द्वार की सुराख से आँख लगाकर उस कमरे में होता भयानक दुष्कृत्य देखा—एक लम्बे कद का व्यक्ति, जो काला ओव कोट पहने था और जिसने चेहरे का अधिकांश भाग ओवरकोट उठे हुए कालर से छिपा रखा था, कमरे में इधर-उधर न जाने क्य ढूँढ रहा है उसके हाथ में एक टार्च है। एक और आदमी साम वाले द्वार के पास खड़ा है, मगर प्रकाश वहाँ तक न पहुँचने कारण उसकी आकृति स्पष्ट नहीं दीख पड़ रही थी।

विन्दु ने भी यह सब देखा। वह धीरे से बोली—"ये दोनों अवश्य किसी अशुभ विचार से यहाँ आये हैं वह देखिये, उनमें से एक ताऊ वाली आलमारी खोल रहा है।"

"उसमें कोई बहुमूल्य वस्तु तो हैं नहीं—हाँ, वसीयतनामा अवश्य है। उसका इन दुष्टों के हाथ पड़ जाना ठीक नहीं। मैं देखता हूँ इन्हें...." कहता हुआ अधर सामने वाले द्वार की ओर बढ़ा मगर विन्दु ने उसका हाथ पकड़ लिया, बोली—"न जाइए, इन शैतानों का सामना अकेले करना ठीक नहीं !"

"यह कैसे हो सकता है, विन्दु ! वसीयतनामा उनके हाथ पड़ जाने पर मेरे पास क्या प्रमाण रह जायेगा कि मैं ही ताऊ का उत्तराधिकारी हूँ। यह कैसे साबित कर सकूँगा कि...उफ ! जाने दो मुझे। सने आलमारी खोल ली..."

"न जाओ, न जाओ प्रियतम ! अगर अपना विचार न करो, तो मेरा विचार कर न जाओ। वे डाकू हैं, हृदयहीन हैं—आप पर कुछ विपत्ति आ गई तो मैं जीते ही मर जाऊँगी ?...." और विन्दु ने प्रेमावेश में अधर को अपने बाहुपास में कस लिया।

अधर के हृदय की स्पन्दनगति तीव्र हो गई। अपनी प्रेम-प्रतिमा को इस प्रकार अपने से आबद्ध पाकर उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। नस-नस में विद्युत-प्रवाह का-सा अनुभव हुआ। यह आनन्द, यह सुख, यह माधुर्य अवर्णनीय था।

विन्दु का हृदय भी जोरों से स्पन्दित हो रहा था। उसने आवेश आकर अधर को बाहुपास में कस लिया था, परन्तु कुछ ही क्षण जब उसका आवेश कम हुआ और ज्ञान-तन्तु पुनः वापस आये वह लज्जा से सिमट-सी गई। उसने अपने आपको अधर से अलग चाहा, पर न कर सकी। अधर ने उसे अपने आलिंगनपास में तापूर्वक आबद्ध कर रखा था।

"छोड़िए न, मेरा रग-रग टूटा जा रहा है..."

"छोड़ दूँगा तो फिर यह अवसर पता नहीं, कब मिलेगा..."

"अब तो आपकी हो चुकी हूँ...अवसर को निकट आपके अधिकार सीमा में है।" विन्दु ने लज्जाश्रित स्वर कहा

सुनकर अधर का मन चंचल हो उठा। उसने विन्दु का रक्त कपोल चूम लिया। विन्दु आनन्दातिरेक से विभोर हो उठी। भूल गई अपने आपको !

अधर को अवसर मिला वह धीरे से द्वार की ओर बढ़ चला विन्दु वहीं भूली-भूली-सी अपने सुकोमल कपोल पर ऊष्ण अधरों चुम्बन का आभास पाती हुई खड़ी रही। कई क्षणों बाद उसे हुआ तब, जब कि उसने ताऊ के कमरे में एक चीख सुनी। चीख अधर की थी।

रिवाल्वर लिए हुए अधर सामने वाले द्वार पर आया उन शैतानों की काली करतूत देखकर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा उसने तत्क्षण रिवाल्वर का घोड़ा दबा दिया। धाँय का शब्द हु और ओवरकोट वाला व्यक्ति 'आह' के साथ, हाथ पकड़कर जमी पर बैठ गया। पर्याप्त प्रकाश न होने के कारण अधर की गो ठीक निशाने पर नहीं लग सकी थी, फिर भी उस ओवरकोटवा व्यक्ति का दाहिना हाथ घायल हो गया था। परन्तु दूसरे शैतान ने पी से अधर के सर पर लाठी दे मारी। अधर चिल्ला पड़ा जोरों से फटे हुए सर से रक्त की धारा बह चली, वह संज्ञाहीन हो जमीन पर गिर पड़ा।

चीख सुनकर विन्दु का हृदय हाहाकार कर उठा। वह पड़ी उस कमरे की ओर, जिसमें अधर इस समय रक्त-रं चेतनाहीन पड़ा हुआ था....और वे दोनों शैतान न जाने कब गये थे।

"मेरे प्राण ! क्या हुआ तुम्हें ? कहती हुई विन्दु ने अधर

र को टो-टाकर देखा। देखा—सर से रक्त की धारा प्रवाहित रही है। घाव की भयानकता देखकर वह घबरा उठी। भीतर द्वार खोलकर बाहर आई। रामू को आवाज दी। रामू घबराया अपने कमरे से बाहर आया—"क्या है मालकिन"

"छोटे बाबू घायल होकर चेतनाहीन पड़े हैं। शीघ्रता करो। क बाबू को भी बुला लो!" रुँआसे स्वर में बोली विन्दु।

दोनों तारक के कमरे के सामने आये। झाँक कर देखा, परन्तु अनुपस्थित था।

"कहाँ गये तारक बाबू? ..." विन्दु ने आश्चर्यचकित होकर।

"पता नहीं कहाँ गये?...सोते समय मैंने उन्हें इसी कोठरी ही देखा था। वे सोने की तैयारी कर रहे थे..." रामू ने कहा।

"अच्छा! जाकर विमल को ही जगा लो..."विन्दु ने कहा। का भी कमरा पास ही था। दोनों उस ओर बढ़े। विमल लोगों की आवाज सुनकर पहले ही जाग चुका था और द्वार चकित-सा इन दोनों को आते देख रहा था।

"मेरे साथ आइये..." विंदु ने विमल से कहा।

तीनों ताऊ वाले कमरे में आये। चेतनाहीन अधर को पलंग लिटा दिया गया। सिर से रक्त इसी तरह बह रहा था और था कि यदि इसी प्रकार रक्त-प्रवाह जारी रहा तो प्राण पर आ पड़ेगा। कोई डाक्टर भी गाँव में नहीं था। विमल आतुर में बोला—"घबड़ायें नहीं आप लोग मैं शहर जाता हूँ कोई र लेकर अभी आता हूँ।

"चार मील जाकर शीघ्र लौट आना सम्भव नहीं है।" ने कहा।

"दौड़ता जाऊँगा और दौड़ता आऊँगा। अधर की ममता अधिक मुझे है!" और दौड़ चला विमल शहर की ओर।

दो घण्टे में वह डाक्टर लेकर आ पहुँचा। डाक्टर ने घाव, चम्मच से अधर के मुँह में दवा डाली और एक शीशी उसे देर तक सुँघाते रहे। फिर बैंण्डेज बाँध कर वे बोले— "घाव

भयानक है, मगर ठीक हो जायगा। सावधान रहने की आवश्यक है..."

दिन-भर अधर की चेतना न लौटी। विंदु बराबर उसको अपनी गोद में लिए बैठी रही। तीसरे पहर न जाने कहाँ से ता आ पहुँचा। चेहरे से परेशानी टपक रही थी। दाहिने हाथ पट्टी ँधी थी और एक रूमाल के सहारे उसे गले से लटक हुए था।

"कहाँ गायब हो गये थे, तारक बाबू?...." पूछा विमल ने।

"क्या बताऊँ? भारी मुसीबत में पड़ गया था...." हाँ हुआ धम्म से वह कुर्सी पर बैठ गया—"रात को बारह बजे करीब खटपट और पिस्तौल की आवाज सुनकर मैं उठकर कमरे बाहर आया। दो आदमियों को हवेली के भीतर से बाहर भा देख मैंने उन्हें ललकारा और..."

"मगर आपके ललकारने की आवाज मुझे नहीं सुनाई प तारक बाबू! मैं तो आपके कमरे के बगल में ही था..." रामू उसकी बात काट दी।

"तुम सा नमकहराम कोई न होगा?..." तारक के मुख क्रूरता नाच उठी—"बैल बेचकर सोनेवाले को क्या सुनाई देगा.. तारक थोड़ा रुका। फिर कहने लगा—"और वे दोनों डाकू ललकारने पर भी न रुके तो मैं दौड़ चला उनके पीछे। इतना दौड़ा की कुछ ही दूर जाकर मैंने उन्हें पा लिया। परन्तु उनमें एक ने जिनके हाथ में एक मजबूत लट्ठ था, मुझ पर दे मारा। मूर्छित होकर गिर पड़ा। मूर्छा तब ग हुई जब कि मैं अस्पताल पड़ा हुआ था। कदाचित किसी दयालु राही ने दया कर मुझे तक पहुँचा दिया था। अभी-अभी वहाँ से छुट्टी मिली है तो भाई का समाचार जानने के लिए दौड़ा चला आ रहा हूँ।"

"कहानी तो बड़ी आश्चर्यजनक सुनाई। चोट लगी और पट्टी बँधी है हाथ पर!..." कहकर विमल मुस्कुरा पड़ा

तारक अपनी भूल पर स्वयं तिलमिला उठा। फिर भी बनकर बोला—"अपनी जबान पर नियन्त्रण रखो, विमल!

अपनी हैसियत को न भूलो...."

रात्रि पर्यन्त अधर की अवस्था चिन्ताजनक रही। उसे होश न आया। विन्दु भूख-प्यास की परवाह न कर रात भर उसकी सुश्रूषा करती रही। विमल भी उसके पास बना रहा।

प्रातःकाल हुआ। अधर में धीरे-धीरे चेतना के लक्षण दीख पड़े। उसने व्यथा से कराहते हुए अपना सर घुमाया। पहला शिथिल एवं अस्फुट स्वर उसके मुंह से निकला—"विन्दु !"

"कैसी तबीयत है आपकी ?..." हर्ष गदगद हो विन्दु ने पूछ लिया।

"वसीयतनामा...!" अधर के मुंह से फिर दूसरा स्वर निकला।

"वह सुरक्षित है, डाकू उसे नहीं ले जा सके !"

"आह !....विन्दु .." अधर पीड़ा से कराह उठा—"देखता हूँ, सुख के स्थान पर तुम्हें कष्ट ही मिला मुझसे...मुझ अभागे के लिए लगता है तुम कष्ट ही कष्ट उठाओगी...."

"चुप रहिये, मेरे देवता अधिक बोलने से पीड़ा बढ़ जायगी...." सिर पर हाथ फेरती हुई वह बोली—"कष्ट उठाकर भी यदि आपको सुखी कर सकी, तो अपना नारी-जीवन सफल समझूँगी मैं।"

"विन्दु, इधर मेरे पास आकर बैठो।"

विन्दु उसके पास चारपाई पर बैठ गई तो वह बोला—"कुछ याद है, विन्दु !..."

अधर ने जिस बात की ओर संकेत किया था, उसे वह समझ गई। उसके कपोल आरक्त हो उठे। लज्जा से उसने आँखें नीची कर ली। बोली—"हाँ, याद है...बहुत सुखद और आल्हादकारी है वह बात !..."

६

"न धन ही मिला, न प्रतिष्ठा ही—क्यों तारक बाबू ?..." कहकर हिना अट्टहास कर उठी। तारक को उसका यह अट्टहास

विषाक्त तीर-सा लगा।

"क्यों घाव पर नमक छिड़क रही हो, हिना! चुप रहना नहीं सीखा है क्या तुम्हारी जाति ने..." कुढ़कर बोला तारक।

हिना वेश्या थी। लोग कहते थे कि उसका शरीर मोम-सा मुलायम है, मगर हृदय पाषाण-सा कठोर! वह युवकों को केवल धन ऐंठने का साधनमात्र समझती है। जो कुछ भी हो, मगर जिसे उसके आन्तरिक-जीवन का पता है, वह जानता है कि हिना जन्म से वेश्या नहीं, वरन् समाज द्वारा ठुकराई जाने पर वेश्या-जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य की गई एक गरीब दुखिया है। समाज की पैशाचिकता की शिकार हुई यदि वह समाज के प्रति विद्रोहाग्नि प्रज्वलित कर, उसमें मनचले युवकों को भस्म करती है, तो इसमें उसका अपराध ही क्या है? शायद ही कोई जानता हो कि वेश्या होते हुए भी उसके हृदय के एक कोने में सहृदयता भी विद्यमान है।

तारक से उसका सालों से परिचय था। यद्यपि वह तारक के कमीनेपन से पूर्णतया घृणा करती थी, फिर भी उसकी हाँ में हाँ मिला देती थी—फतिंगे को अपने पास खींचकर उसे जला देना ही तो दीपक का काम है! वास्तव में हिना को ऐसे युवकों से असीम घृणा थी।

इन्हीं पापिष्टों ने, इन्हीं विषधरों ने, इन्हीं चिकनी चुपड़ी बातें करनेवाले नवयुवकों ने ही तो उसका घर-बार छुड़वाया और उसकी यौवन-निधि लूटकर, उसे बरबाद कर, इस संसार में अपमान का जीवन व्यतीत करने के लिये निस्सहाय छोड़ दिया।

"आप बहुत पी चुके हैं—अब मत पीजिये!" तारक आलमारी से 'जानीवाकर' की दूसरी बोतल निकाल रहा था, हिना ने उसे टोका।

"मेरा हृदय उद्विग्न है, दावानल की तरह द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी है—उसे शान्त करना चाहता हूँ...." कहकर उसने शराब प्याले में उड़ेल ली और एक साँस में पी गया। फिर मुँह रूमाल से पोंछता हुआ एक लम्बी साँस लेकर पुनः बोला—"इतना सब षडयन्त्र रचा, खतरे का सामना किया कष्ट पर कष्ट झेला—

भी असफल ही रहा। बाँह में यह चोट इतनी गहरी लगी है —उफ !"

बाँह हिल जाने से दर्द बढ़ गया और तारक के मुख से एक आह निकल पड़ी—"तुम जानती हो, कुचले हुए साँप का कितना भयंकर होता है ?... मैं भी उसे बरबाद करके ही दम गा। कल गली-गली में ठोकर खाता हुआ भीख माँग रहा था आज मिर्जापुर का सबसे बड़ा जमींदार बन बैठा है। ताऊ भतीजा होकर मैं नौकर बनूं और वह बने राजा....यह नहीं हो —कभी नहीं हो सकता !"

"तारक बाबू ! मानवता को दानवता की शिला के नीचे दबाकर उसकी हत्या न कीजिए। भाग्य के साथ विद्रोह करना दायक होता है। आप शान्त चित्त से इस पर विचार कीजिये और समझ लीजिये कि आपके भाग्य में यही बदा था !..." हिना नेक सलाह दी।

"क्यों समझ लूँ ? भाग्य कोई चीज नहीं..." तारक ताव बोला—"भाग्य अकर्मण्यों का कुन्द पड़ गया हथियार है.... की अमिट रेखा को मिटा देना उतना ही सरल है, जितना ....देखती हो यह क्या है ? ..."

हिना ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखा।

"यह एक ऐसा विषाक्त पदार्थ है, जिसे यदि मनुष्य के रक्त में प्रकार प्रवेश करा दिया जाय तो वह पूर्णतया अपनी ज्ञान- खो देगा, पागल बन जायगा वह, एकदम पागल !..."

"आप इसका प्रयोग अपने भाई पर करेंगे ?"

"ताऊ की दया पर पलने वाला मेरा भाई कैसे ? मैं इस विष उसके रक्त में प्रवेश करा दूँगा। वह पागल हो जायगा और आराम से जीवन व्यतीत करूँगा—तुम्हें रानी बनाऊँगा ! पुड़िया छीनने का प्रयत्न न करो दूर हटो..."

हिना ने तारक के हाथ से वह पुड़िया छीन लेनी चाही, परन्तु ने शीघ्रता से उसे जेब में डाल लिया।

* * * *

चोट लगने के तीन दिनों के बाद तक अधर की अवस्था शोचनीय बनी रही। कभी उसे चेतना हो जाती और कभी घाव की असह्य वेदना से चेतना खो बैठता। चौथे दिन उसकी अवस्था कुछ सुधरी। यद्यपि घाव अभी तक सूखा न था, परन्तु वेदना कम थी। आज दस बजे से ही वह आराम की नींद सो रहा था और मध्यान्ह के तीन बज जाने पर भी न उठा था! विन्दु सिरहाने बैठी हुई पंखे से अविराम हवा कर रही थी!

विमल जमींदारी के काम से कहीं गया हुआ था रामू सदर दरवाजे पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था और तारक! वह अभी अभी शहर से लौटा था और अधर की अवस्था देखने के लिए उसके कमरे की ओर जा रहा था। इसकी मुखाकृति पर दुष्टता झलक रही थी।

"अधर भाई की तबीयत कैसी है...." कमरे में प्रवेश करते ही उसने धीरे से विन्दु से पूछा।

"आज तो अच्छा है! बहुत देर से सो रहे हैं...."

"घाव पर दवा लगा दी है न?"

"नहीं, दवा लगाने का समय तो व्यतीत होता जा रहा है, निद्रा कैसे भंग करूँ, यह सोच रही हूँ।"

"तुम बहुत भोली हो, विन्दु!" कहते हुए तारक हंस पड़ा "तुम तनिक भी चिन्ता न करो। मैं इतनी सरलता से पट्टी बांध दूंगा कि इनकी निद्रा मे लेशमात्र भी बाधा नहीं पड़ेगी। तुम दवा लाओ।"

विन्दु को तारक की इस सहृदयता पर आश्चर्य हुआ। वह दौड़कर मलहम वाला डब्बा उठा लाई। तारक अधर के सिरहाने कुर्सी पर बैठ गया और उसके सर की पट्टी धीरे-धीरे खोलने लगा। अधर जरा भी हिला डुला नहीं, दो एक बार वह सगबगाया अवश्य था। पट्टी खोल चुकने पर विन्दु से बोला—"इसे फेंटने के लिए एक चम्मच चाहिए।"

विन्दु दूसरे कमरे से चम्मच लाने चली गयी। इतने में तारक ने जेब से एक छोटी-सी पुड़िया निकाली। पाप ने सावधान किया।

उसका हृदय धड़क उठा। परन्तु यह धड़कन क्षणिक थी। उसने स्तत: दृष्टि निक्षेप की ओर फिर सन्तोष की गहरी साँस लेकर उस पुड़िया के श्वेत पदार्थ को मलहम में डाल दिया।

बिन्दु चम्मच खोज रही थी। कुछ देर बाद वह उसे लेकर आई। ता[illegible] ान्त चित्त से कुर्सी पर बैठा हुआ उसकी प्रतिक्षा कर रहा [illegible] सने बिन्दु के हाथ से चम्मच लेकर दवा को खूब [illegible]। मलहम बन जाने पर उसने उसे अधर के घाव पर लगा और पट्टी बाँध दी। अधर की नींद न टूटी।

"लो काम समाप्त हुआ।" कहकर वह प्रकोष्ठ के बाहर आया। उसने विन्दु को अपने पास बुलाकर बोला—"मेरे पीछे आओ ?"

भोली भाली विन्दु बिना किसी विचार के उसके पीछे-पीछे पड़ी।

"क्यों बुलाया है ?..." विन्दु ने उसके प्रकोष्ट में आकर पूछा।

"बात यह है..." तारक जरा गला साफ कर बोला—"मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि यदि किसी आदमी के पास अगाध धनराशि हो तो उसे क्या करना चाहिये....अभिप्राय यह है कि उसे प्रकार अपने धन का उपयोग करना चाहिए ?"

"ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार ताऊ किया करते थे, मतलब उस धन को दरिद्र और अनाथों के कष्ट दूर करने में व्यय करना चाहिए।"

"ठीक ! बिलकुल ठीक !"

"मगर आपकी बात का तात्पर्य क्या है ?...." विन्दु ने पूछा।

"तात्पर्य !...." तारक के ललाट पर एकाएक कई विकृत रेखायें खिच आयीं, परन्तु तुरन्त ही बिलुप्त हो गईं। वह मुस्कुराता हुआ बोला—"मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे पास भी अगाध धन है, मगर तुम..."

"आप का दिमाग तो ठीक है न ? तारक बाबू ! भला मुझ भिखारिन के पास धन कहाँ ?"

"सोने चाँदी के टुकड़ों को ही धन नहीं कहा जाता, विन्दु !.... पास ऐसा धन है, जो अनुपम है, अगम है, अगाध है...

देवकन्याओं को भी दुर्लभ है वह....देवर्षि उस दुर्लभ वस्तु को पा
कृतकृत्य हो गये हैं... यावत् जगत अपनी सारी शक्ति, अपना सा
जीवन उत्सर्ग कर देता है उसपर...."

"आप कहना क्या चाहते हैं? मेरी समझ में कुछ न
आया।"

तारक पुनः क्रूर हँसी हँसता हुआ बोला—"मैं यह कह
चाहता हूँ कि सौंदर्योद्यान में सदैव पतझड़ ही रहेगा या भ्रमर
गुंजार करेंगे?"

"तारक बाबू! अपनी जबान पर काबू रखिये..." विन्दु सरो
बोली। तारक की घृणित मनोवृत्ति अब उसकी समझ में
गई थी।

"इतनी लाल पीली मत होओ, विन्दु!" तारक ने हा
बढ़ाकर विन्दु की कलाई पकड़ ली—"रोष से नृत्य करते तुम्हारे
मदभरे नयन अद्भुत हैं! जी चाहता है इन्हें चूम लूं और तृप
जाऊँ..."

"अपना भला चाहते हो तो अभी चले जाओ यहाँ से, नहीं
मैं चिल्ला पड़ूंगी।"

"चिल्ला कर तुम अपना ही अहित करोगी..." पैशाचिक हँ
हँसकर वह बोला—"तुम्हें प्यार करता हूँ—प्यार का ठुकरा
व्यक्ति काल बनकर घहरा पड़ता है, मैं कौन हूँ, तुम यह अच्छी त
जानती हो।"

"खूब अच्छी तरह जानती हूँ। तुम मानव के वेश में दा
हो। तुम्हारा रग-रग विष से भरा हुआ है, फिर भी एक साध
नारी का तुम कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

"बिगाड़ कर ही दम लूंगा। अपनी आकांक्षा पूर्ति के लिए
जान पर खेल जाऊँगा...." कहते हुए तारक ने विन्दु को खींच
अपने बहुपास में कस लिया।

"दुराचारी!" विन्दु कर्कश स्वर में गरज पड़ी और उस
नाक पर कस कर ऐसा घूसा मारी कि वह तिलमिला उठा।

"नादान लड़की!...." वह फुफकारता हुआ बोला—"तू बि

वं में भूली है ? मुझसे दूर रहकर तू सुख पूर्वक नहीं रह सकती घर के बल पर फूली है —क्यों ?...मगर अब अधर भी तेरे काम नहीं रहा..."

यह सुनकर बिन्दु का रोम-रोम काँप उठा। तारक कहता गया- 'अधर ही मेरे कार्य में सबसे बड़ा बाधक था उस दिन उसने मुझपर ण्टर चलाया था ...सट्ट ! सट्ट !! आज मैंने भी अपना बदला ले लिया। मलहम, जिसे मैंने उसके घाव पर लगाया है, वह विषैला था, । विष था उसमें कि वह रक्त के साथ मिल कर, तुम्हारे अधर ो रोता, कलपता, चिल्लाता हुआ पागल बना देगा...उसे शरीर सुध नहीं रह जायगी। उसे पागलखाने भेजकर मैं इस जमींदारी अधिकार कर लूँगा और तुम्हें अपनी बनाकर चैन की साँस गा !..."

"तारक बाबू !" वह जैसे पानी सी तरल बनकर बोली— मुझे जो चाहे कष्ट दे दो, परन्तु उन्हें पागल होने से बचा लो। नहीं देख सकती उनका कष्ट...."

अब कोई भी शक्ति उसको अच्छी नहीं कर सकती। वह इसी र पागलखाने में अपना शेष जीवन व्यतीत करेगा।"

"निशाचर ! ..." पानी बन गई बिन्दु एकाएक आग बन गई। पीसती हुई वह बोली—"जान गई आज अच्छी तरह को तू स है। ताऊ की जान तूने ही ली है, अब उनकी भी जान लेना ता है..."

'बिलकुल गलत !" तारक गरज उठा !

"मैं चिल्लाऊँगी, सबको बुलाकर तेरी पोल खोलूँगी कि यह है—विषाक्त नाग है...." क्रोधावेग में बिन्दु जोरों से हाँफने ।

तारक हँस पड़ा, बोला—"बुला लो, खुशी से बुला लो। सब गों को दिखा दो कि तुम अकेली मेरे साथ इस कमरे में उपस्थित और मैं तुम्हारा शील भंग कर चुका हूँ।"

"हे ईश्वर !" बिन्दु के मुख से हताश स्वर निकल कर शून्य वरण में विलीन हो गया।

"विन्दु ! औरतों की प्रतिष्ठा कच्चे धागे पर स्थिर है। लोग मुझे और तुम्हें एकान्त कमरे में देख लेंगे तो क्या कहेंगे? इसे समझ लो...मुझे क्या? मुझे चाहे जो कहें लोग, मैं बरदास्त लूँगा, किसी प्रकार सह लूँगा। परन्तु तुम स्त्री हो, तुम्हारे चरित्राकाश में काला धब्बा लग जाने पर सारा जगत तुमपर थूकेगा। तुम्हें अपशब्दों से अलंकृत करेगा। समाज पर पुरुषों का अधिकार है। इसने पुरुषों को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। मगर स्त्रियों को नहीं। याद रखो! यदि घाव में विष देने की बात तुमने किसी से कही तो मैं समाज में यह बात फैलाने में जरा भी संकोच न करूँगा कि तुम मुझे चाहती हो और तुम्हीं ने अधर के घाव में विष देने के लिए बाध्य किया था, ताकि हम तुम दोनों आराम से रह सकें। घबड़ाने की आवश्यकता नहीं! ..अधर की मृत्यु नहीं होगी केवल पागल बना रहेगा वह। तुम्हें चाहिए कि धैर्य रख कर जो कुछ सामने आये, सहन करो, मैं तुम्हें जरा भी कष्ट न होने दूँगा..."

"मार डाल मुझे? क्यों तड़पने के लिए जीवित रखना चाहता है, पापीष्ट !...."

उत्तेजना से आक्रान्त विन्दु पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उसी समय अधर बड़े जोर से चीख उठा।

० ० ० ०

"पागल ! पागल !! पागल !!!" विन्दु हाहाकार कर रही थी।

"क्या हुआ, क्या हुआ?...." कहता हुआ दौड़ पड़ा विमल। रामू भी दौड़ा। सब व्याकुल होकर अधर के कमरे की ओर दौड़े।

वह जानती थी, जिसने उसके जीवन-धन को पागल बना डाला था, मगर वह किस मुँह से कहती? उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न था वह पापात्मा तारक ने उसे जो भय दिखाया था, उससे वह किसी पर सत्यता प्रकट नहीं कर सकती थी।

समाचार पाकर नारायण काका भी नंगे पाँव दौड़े आये—

"क्या हुआ...क्या हुआ?" उन्होंने रामू से पूछा।

रामू ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"काका! छोटे सरकार पागल

हो गये हैं। पागलपन में इधर-उधर कमरे में दौड़ रहे हैं। घाव से रक्त चू रहा है। किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ती कि उन्हें पकड़े !"

"बुरा हुआ ..." काका बोले—"रामू ! तू डाक्टर के पास दौड़ जा ! जल्द आना बेटा ! मैं उसके पास जा रहा हूँ..."

दौड़े हुए काका भीतर आये। देखा सब लोग द्वार पर खड़े हैं। भीतर अधर चीखता-चिल्लाता हुआ दौड़ रहा है—बेचैनी से !

काका विन्दु के पास आकर खड़े हो गये। बोले—"किसने तेरी दुनियाँ उजाड़ी है, बेटी ?"

सुनकर विन्दु जोरों से रो पड़ी। एक बार तो उसके मन में आया कि वह सब कुछ कह दे, मगर उफ ! कैसे बता सकती थी वह। यदि अन्धे समाज के आगे पाखण्डी तारक अपनी कही हुई बात प्रकट कर देगा तो क्या करेगी वह ? लांछित होने पर कहाँ जायगी ?

"काका !..." वह बोली—"मैं मर जाऊँगी, काका !"

"धैर्य से काम ले, बेटी !..." काका ने सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा।

डाक्टर आया। अधर की अवस्था देखकर गम्भीर मुद्रा बनाकर बोला—"केश भयानक हो गया है। इन्हें पकड़ कर चारपाई पर लिटाइए, तब मैं घाव की परीक्षा करूँ।"

विमल और रामू ने मिलकर बलपूर्वक अधर को पलंग पर लिटा दिया। उसके हाथ-पैर बाँध दिये गये।

डाक्टर ने अधर को क्लोरोफार्म सुंघाया। धीरे-धीरे अधर की चेतना लुप्त होने लगी और थोड़ी देर में वह पूर्णतया चेतनाहीन हो गया। डाक्टर ने घाव की पट्टी खोली, घाव से रक्तप्रवाह जारी था। डाक्टर रक्त की परीक्षा करने लगा। एकाएक उसकी मुखाकृति गम्भीर हो गई। वह बोला—"घाव में विष है। यह कैसे हुआ ?"

"विष ! ..विष कहाँ से आया ?..." काका आश्चर्य से बोले—"अवश्य ही इस घर में कोई काला नाग है..."

"अवस्था सोचनीय है..." डाक्टर बोला—"जीवन की आशा

नहीं, परन्तु प्रयत्न करूँगा... विष दूर करने की दवा देता हूँ...'

* * * *

रामू चिल्ला उठा—"तारक बाबू ! आप यह क्या कर रहे हैं ?

"ठीक कह रहा हूँ रामू..." तारक बोला—"अधर भाई घाव में विष देनेवाला विमल है !"

"मुझे तुम्हारी बुद्धि पर तरस आती है, रामू ! तुम न जानते, मगर मैं जानता हूँ। उस दृष्टि से बिना इसका बदला लि चैन नहीं लूँगा। जिस शैतान ने अधर भाई को तबाह किया उसके कलेजे में अपना खंजर भोंक कर ही दम लूँगा...रामू ?

"जी सरकार !"

"तूने मालिक का नमक खाया है न ? ..."

"भला यह भी कोई कहने की बात है, उनके लिए प्राण दे सकता हूँ, सरकार !"

"प्राण देने को आवश्यकता नहीं केवल यह खंजर उस हराम विमल के कलेजे में भोंकना है..." तारक ने कहा और ए खंजर निकाल कर रामू के आगे कर दिया।

"तारक बाबू !..." रामू अवरुद्ध कण्ठ से बोला।

"आगा पीछा न कर ! यदि मालिक का नमक खाया है उसे सार्थक कर, यदि अधर को प्यार करता है तो उसे बरबाद वाले के रक्त से यह खंजर लाल कर। रात की यह नीरवता तेरे में सहायक होगी..."

"दो मुझे। उसने मालिक का घर उजाड़ा है तो मैं भी उजाड़ दूँगा...." रामू ने खंजर हाथ में ले लिया—"उसने सरकार को बिगाड़ा है, मैं उसे बिगाड़ दूँगा !"

रामू विमल के कमरे की ओर बढ़ा। उस समय सारा जगत सुखद निन्द्रा में अभिभूत हो स्वप्न-संसार में विचरण कर रहा था। काली रात साँय-साँय कर रही थी। रामू विमल के द्वार के सामने आकर खड़ा हो गया। द्वार खुला था। भीतर विमल आराम की नींद सो रहा था। रामू ने अपने चारों ओर दृष्टि घुमाई। अकस्मात बिन्दु को वहाँ उपस्थित देख, वह सन्न रह गया। कदाचित किसी

आवश्यक कार्य से वहाँ आई थी वह।

"कौन ?...रामू !..." विन्दु पास चली आई। रामू के काँपते हुए हाथों से वह खंजर भूमि पर गिर पड़ा। खन्न की आवाज हुई ! विन्दु चौंक पड़ी—"यह क्या ? खंजर ?...खंजर लेकर क्या करने आया था, रामू ?"

"मालकिन...." रामू कुछ बोल न सका।

"साफ-साफ कहो क्या बात है ?..." विन्दु ने डपटकर पूछा।

"मालकिन ! विमल ने ही छोटे सरकार का विनाश किया है..." रामू ने डरते-डरते कह दिया।

"यह किसने कहा तुमसे ?"

"स्वयं तारक बाबू ने..." रामू बोला। विन्दु दाँत पीसकर रह गई।

उसी समय अन्धकारपूर्ण रात्रि की नीरवता को वेधता हुआ एक उलूक का कर्कश स्वर गूँज उठा।

७

डाक्टर की तत्परता, विन्दु की अविराम सेवा एवं विमल की दौड़-धूप से अधर की बीमारी बढ़ने नहीं पाई—अवस्था ज्यों की त्यों बनी रही। यद्यपि दवा लगाने से सर का घाव अच्छा हो चला था, मगर उसका पागलपन अभी तक दूर नहीं हुआ। इसी अवस्था में दिन बीतते गये उसके।

डाक्टर यथाशक्ति उपचार कर रहा था, परन्तु अपनी दवा असर करते न देख, उसे आश्चर्य हुआ। एक से एक बढ़ कर इन्जेक्शन, एक से एक मूल्यवान औषधियाँ दी, परन्तु सब व्यर्थ !

अधर की अवस्था सुधरते न देख, विन्दु ने डाक्टर से पूछा—"ये कब तक अच्छे हो जायेंगे ?"

डाक्टर ने सांत्वनापूर्ण स्वर में कहा—"मेरे एक सम्बन्धी कलकत्ता में सिविल हॉस्पीटल के सर्जन हैं। मैं फोन द्वारा उनसे परामर्श करूँगा ! आप घबड़ाइये नहीं।"

दूसरे दिन डाक्टर ने आकर बताया कि मैंने अपने सम्बन्ध सर्जन से बात-चीत की थी। उन्होंने बताया कि रोगी को भूखा रखा जाय। जितना अन्न रोगी के पेट में जाता है, वह विष बनकर और भी हानिकारक हो जाता है। लगभग दस पन्द्रह दिन तक भोजन न देने से अवस्था काबू में आ जायगी। इस बीच औषधि इसी प्रकार चलती रहेगी..."

अधर का भोजन बन्द कर दिया गया। तीन चार दिनों तक तो वह कुछ न बोला—पाँचवें दिन उसने खाने की रट लगाई परन्तु बहुत उछल-कूछ मचाने पर भी उसे भोजन न मिला। उसके कमरे का दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया गया था, ताकि वह बाहर न निकल सके। केवल दवा पिलाने के समय दरवाजा खोला जाता था।

दस दिन बीत गये अधर को रोते-चिल्लाते, तारक को खुशियाँ मनाते, विन्दु को आँसू बहाते और विमल को सान्त्वना देते।

दस दिनों तक एक दाना मुँह में न जाने से अधर की उत्तेजना कुछ शान्त हुई। उसका मस्तिष्क ठिकाने आने लगा। उसके कमरे का दरवाजा खोल दिया गया। वह अपने पलंग पर बैठा हुआ मन ही मन न जाने क्या बड़बड़ाया करता।

जब विन्दु उसके पास जाती तो सिक्त नेत्रों एवं अवरुद्ध कण्ठ से वह कहता—"विन्दु! मुझे मार डालो, कलेजे में छुरी भोंक दो। इस तरह भूखों मारने से तुम्हें क्या मिलता है?....थोड़ा सा भोजन मुझे दे दो, विन्दु!... भूख से तड़फड़ा रहा हूँ..."

विन्दु के मन मे आता कि क्यों न थोड़ा-सा खाना दे दें, परन्तु दूसरे ही क्षण डाक्टर का आदेश स्मरण कर उसका हृदय हाहाकार कर उठता और वह अपना विचार बदल देती। हृदय पर पत्थर रख कर वह कमरे से बाहर हो जाती।

अधर जब चैतन्य रहता तो ठीक से बातें करता, मगर जब कभी आवेश में आ जाता तो उसका मस्तिष्क गर्म हो जाता और पुनः वही पागलपन आरम्भ हो जाता।

एक दिन अधर शान्त चित्त से चारपाई पर बैठा हुआ था। पास मे केवल तारक था। विमल कहीं गया हुआ था। विन्दु भोजन

रहा थो। तारक अधर के पास बैठा हुआ सहानुभूतिपूर्ण शब्दों सान्त्वना दे रहा था—"खाने के लिए इतने उतावले न बनो, भाई। पेट में दाना जाते ही वह विष बन जायगा।"

"मुझे भूख लगती है तारक ! ऐसी भूख कि रहा नहीं जाता। तुम गैरों की तरह निर्दयी न बनो...." अधर अस्फुट स्वर में बोला।

"तुम यह क्या कह रहे हो, अधर भाई ! क्या तुम नहीं जानते तुम्हें कितना चाहता हूँ ?"

"खूब चाहते हो...! चाहते हो तो मेरी क्षुधा शान्त करो, नहीं गला घोंट दो—ताकि सब यन्त्रणाओं से छूट जाऊँ ! तुम लोगों का हृदय पत्थर क्यों बन गया है ?"

"मैं दूँगा तुमको अधर भाई ? तुम खाने के लिए व्याकुल हो मैं तुम्हें खाना दूँगा।" कहकर तारक उठ खड़ा हुआ। बाहर लगा तो अधर ने कहा—"छिपाकर लाना !"

थोड़ी ही देर में तारक वापस आया। जेब से बिस्कुट का निकाल कर उसने अधर के आगे रख दिया। अधर उस बिस्कुट क्षुधातुर व्यक्ति की तरह टूट पड़ा। दुष्ट तारक ने अधर के का जैसे बीड़ा उठा लिया था।

"गजब हो गया, विमल बाबू ! छोटे सरकार की हालत फिर हो गई है !..." अत्यधिक घबड़ाया हुआ रामू विमल के में आकर बोला।

विमल आश्चर्य से उठ खड़ा हुआ...."क्यों, क्या बात हुई ?" पूछा।

"पता नहीं मगर इस समय उनकी अवस्था पहले से भी अधिक है। वे पूर्णतया पागल हो गये है ! मालूम होता है कि..."

"...कि किसी ने उन्हें खाना दे दिया—यही न तुम कहना हो !...विन्दु का ही यह काम हो सकता है..." विमल।

"इस नादान लड़की ने सब चौपट कर दिया !..." नारायण हताश वाणी में बोले। अवस्था चिन्ताजनक होने की बात वे भी चले आये थे।

डाक्टर आया। जाँच करने के पश्चात बोला—"केश होपलेस है। अब मेरे बस का नहीं अगर आप लोग चार-छः हजार रुपये खर्च करने के लिए प्रस्तुत हों तो मैं अपने सम्बन्धी को बुला दे सकता हूँ...फिर भी मैं किसी बात का विश्वास नहीं दिला सकता।"

"आप बुलाइए—"मैं लाख, दो लाख खर्च करने को प्रस्तुत हूँ..." अधिकारयुक्त स्वर में तारक बोला।

ठीक बीस घण्टे पश्चात कलकत्ते से ही वह डाक्टर आया। क्लोरोफार्म से अधर को बेहोश कर, उसका रक्त संचार देखा। फिर उसकी अंगुली में सुई चुभाकर रक्त निकाला और उसकी आवश्यक परीक्षा कर लेने के बाद बोला—"रक्त विषाक्त हो चुका है। यद्यपि अभी प्राणघातक विष नहीं है, फिर भी कुछ ही दिनों में हो जायगा। इनके शरीर से विषाक्त रक्त निकाल देना पड़ेगा..."

"वह कैसे ?..." विमल ने साश्चर्य पूछा।

"एक रास्ता है—केवल !...जो आदमी इनको सबसे अधिक चाहता हो, उसी की इस समय आवश्कता है...."

"कहिये, कहिये डाक्टर साहब !" तुरन्त विन्दु उनके पास चली आई।

"हम लोग सब तरह से तैयार हैं ?" विमल बोला।

"मैं इस रोगी का विषाक्त-रक्त निकाल कर एक स्वस्थ आदमी का रक्त इनके शरीर में प्रवेश कराऊँगा। इस काम के लिये मुझे एक साहसी आदमी की आवश्यकता है, जो प्रसन्नतापूर्वक अपना आठ औंस रक्त दे सके। कष्ट ता अवश्य होगा, मगर दूसरा रास्ता है नहीं..."

"मैं तैयार हूँ..." विमल आगे बढ़ आया।

"नहीं मैं..." विन्दु ने आपत्ति की।

"विमल को रक्त देने दो। " तारक बोला।

मगर विन्दु किसी प्रकार अपना रक्त देना चाहती थी।

अन्त में डाक्टर ने फैसला दिया—"जब तक पुरुष का रक्त उपयुक्त हो तब तक स्त्री का रक्त लेना ठीक नहीं। आप यहाँ आइये...." डाक्टर ने विमल को संकेत से बुलाया।

विमल आकर डाक्टर के पास खड़ा हो गया। डाक्टर ने एक पिन से उसकी अँगुली का रक्त निकालकर परीक्षा की, फिर सर हिलता हुआ बोला—"नहीं, आप के रक्त से काम नहीं चलेगा। आपका रक्त दूषित है।"

विन्दु हर्षित हो उठी। व्यंगात्मक स्वर में तारक से बोली—"तुमने मेरे रक्त को बहुमूल्य समझकर रक्त देने से मना कर दिया था, परन्तु रक्त ने रक्त को पुकार ही लिया..." और वह जाकर डाक्टर के सामने खड़ी हो गई। डाक्टर ने उसके रक्त की परीक्षा की और सन्तोष की साँस लेकर बोला—"तुम्हारा रक्त मेरे काम आ सकता है। तुम अपना चित्त स्थिर कर लो..."

"मैं खूब स्थिर चित्त हूँ, डाक्टर साहब!..."

"डाक्टर साहब!" तारक बोला—"यह छोकरी नादान है।"

"जमींदारी में असंख्य आदमी हैं, उनमें से जिसका रक्त अनुकूल होगा ले लिया जायगा...विन्दु, तुम्हें मैं इस बखेड़े में नहीं पड़ने दूँगा..."

"अब तुम चुप रहो, तारक बाबू!"

उसके स्वर में इतनी तीक्ष्णता थी कि वह चुप रह गया।

डाक्टर ने सबको कमरे से बाहर जाने के लिए संकेत किया। संकेत समझकर सभी बाहर चले गये, केवल विन्दु और विमल रह गये वहाँ। उस कमरे में एक और विस्तर का प्रबन्ध कर लिया गया। डाक्टर सब आवश्यक यन्त्र एवं औषधियाँ अपने साथ लेता आया था। एक बड़े से टेबुल पर सब सामान रख, वह अपने काम में जुट गया।

लगभग चार घण्टे में सारी क्रिया सम्पूर्ण हुई। अधर का विषाक्त रक्त निकालकर विन्दु का विशुद्ध रक्त उसे प्रदान किया गया। रक्त-निस्सरण से विन्दु बहुत कमजोर हो गई थी, अतः उसे चारपाई पर लिटा दिया।

कुछ दिनों के औषधोपचार से विन्दु पूर्णतया स्वस्थ हो गई। अधर भी अच्छा हो चला। चलते समय डाक्टर ने कहा था—"इनकी हालत सुधर जायगी, मगर इनके रक्त की ऊष्णता

जीवन पर्यन्त दूर न हो सकेगी—इसलिए इन्हें उत्तेजना से सदैव बचाना होगा। यदि ये कभी भी उत्तेजित हुए तो इनका मस्तिष्क पुनः खराब हो सकता है। आप लोग इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे, इनके सामने कभी उत्तेजना उत्पन्न करने वाली बातें न की जायें।"

—"डाक्टर साहब!..." बिन्दु ने कहा—"इनका रोग पूर्णतया दूर करके जाइये न।"

"असम्भव! इतने से ही सन्तोष कीजिए कि इनकी जान बच गई, नहीं तो कोई आशा न थी। यदि उन्हें उत्तेजित न किया जायगा तो इस रोग के उभरने की पुनः आशा नहीं। थोड़ी सावधानी की आवश्यकता है..."

अधर की तबीयत ठीक होने लगी, मगर उसे यह न मालूम हो सका कि बिन्दु ने ही अपना रक्त प्रदान कर उसे जीवनदान दिया है।

८

"बात बड़ी भयानक है अधर भाई! मगर विश्वास करना ही होगा। इसमें अविश्वास के लिए लेशमात्र भी स्थान नहीं..." तारक ने कहा।

अधर पलंग पर बैठा हुआ उसकी बातें सुन रहा था। यद्यपि अभी तक पूर्णतया स्वस्थ नहीं हुआ था, फिर भी इस योग्य हो गया था कि मजे में बैठकर बात-चीत कर सके।

"इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता!" अधर बोला—"विमल इतना नीच हो सकेगा, यह स्वप्न में भी सोचा नहीं जा सकता। भला जिसने उसे बचाया—आश्रय दिया उसी के घाव में वह विष घोल देगा?—कभी नहीं! सरासर झूठ है यह!"

"विश्वास करना या न करना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, मगर मैं निश्चय रूप से कह सकता हूँ कि विमल ने ही तुम्हारे घाव में विष प्रवेश कराया था और यदि ठीक से तुम्हारी चिकित्सा न की गई होती तो उस दुष्ट की इच्छा पूर्ण हो जाती...मगर अधर भाई! तुम उस पर इतना विश्वास क्यों करते हो?"

"पहले ही की तरह इस समय भी तुम नादानी कर रहे हो, तारक ! अन्यथा विमल पर तुम अकारण संदेह न करते..." अधर ने कहा ।

"अच्छा मान लिया जाय कि विमल निर्दोष है तो फिर बिन्दु का यह काम होगा ?"

"कभी नहीं यह भी सम्भव नहीं..."

"तो फिर यह काम किसने किया ?—मैंने ?" तारक ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से अधर की ओर देखते हुए कहा ।

"भला तुम ऐसा हेय काम क्यों करोगे ?" अधर ने मुस्कराते हुए कहा—"अभी तुम कह चुके हो कि मेरी अवस्था शोचनीय हो जाने पर डाक्टर ने जब किसी आदमी का विशुद्ध रक्त माँगा था, तो तुम्हीं ने रक्त देकर मेरी जान बचायी थी...."

दुष्ट तारक ने अधर के सामने अपनी पैशाचिकता पर परदा डालने के अभिप्राय से कह दिया था कि स्वयं उसी ने उसके लिए अपना रक्त प्रदान किया है। अधर ने इस बात को सत्य मान लिया, क्योंकि वह अभी तक यह न जान सका था कि वास्तव में उसकी प्राणदायिनी बिन्दु है...किसी ने उसे बताया भी तो नहीं था ।

विंदु अपने मुख से यह बात कहना नहीं चाहती थी, इसलिए तारक ने स्वयं अपना रक्त देने की बात कही तो अभागा अधर उसका विश्वास कर बैठा। यही नहीं, वह उस पर अतीव प्रसन्न हुआ और समझ बैठा कि तारक उसका पूर्ण हितैषी है, मगर उस स्वर्ण घट के अन्तराल में जो अगम विषराशि अन्तर्हित थी, उसे अधर की मानवी आँखें न देख सकीं—पारदर्शी तो थी नहीं वे ।

"तो फिर आप ही बताइये कि यह विष किसने दिया ?—किसने आपका विनाश करने का प्रयत्न किया ?"–तारक ने पूछा

"यही तो समझ में नहीं आता, तारक ! समस्या बड़ी जटिल है ।"

"समस्या जटिल नहीं है, अधर भाई ! इतनी साफ है कि एक अदना आदमी भी समझ सकता है ।"

"यह सारा कार्य विमल का है। मेरे पास प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त प्रमाण है।"

"प्रमाण ? ..तुम प्रमाण भी दे सकते हो ?"

"यह देखो ? उसी पुड़िया का कागज है, जिसमें वह विष रखा गया था...." तारक ने कहा।

अधर ने हाथ बढ़ाकर वह कागज ले लिया। पूछा—"कहाँ मिला यह तुम्हें ?"

"विमल के कमरे में...." बेधड़क उसने कह दिया।

एकाएक अधर की मुखाकृति गम्भीर हो गई। तारक की प्रसन्नता उछाल खाने लगी। उसने अनुभव किया कि अधर पर उसकी बातों का प्रभाव पड़ गया है !...और अधिक प्रभाव डालने के अभिप्राय से वह बोला—"क्षमा करना भाई ! किसी को बदनाम करने की प्रवृति मेरी नहीं है, फिर भी मैं वास्तविक घटनाओं से तुम्हें पूर्णतया परिचित करा देना चाहता हूँ...तुम्हें याद होगा कि कुछ दिन पहले विन्दु की ओर से तुम्हें सावधान रहने को मैंने कहा था, मगर तुमने उस बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया था ! आज मैं पुनः तुम्हें सावधान करता हूँ...विमल और विन्दु किसी भीषण षड़यन्त्र की रचना करने में तल्लीन हैं। इनके पीछे अवश्य ही कोइ दुर्दान्त शक्ति काम कर रही है, जो छिपे-छिपे तुम्हारा विनाश करने पर कटिबद्ध हैं...."

"अनुमान पर किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता..." एकाएक अधर गम्भीर हो गया। उसने गहरी साँस ली और दृढ़ स्वर में बोला—"विमल और विन्दु दोनों निर्दोष हैं—निरपराध हैं।"

"यह कैसे हो सकता है, अधर भाई ? कैसे हो सकता यह..." तारक अस्त-व्यस्त स्वर में बोला—

"क्या यह सम्भव नहीं कि यह काम किसी दूसरे का हो और उसने विमल को फँसाने के लिए यह कागज उसके कमरे में रख दिया हो ?...तारक ? तुम्हारा प्रमाण यथेष्ट नहीं..." अधर दृढ़ स्वर में बोला।

तारक के मुख पर कालिमा पुत गई। उसने केवल इतना

कहा—"किसी दिन मेरी बात को याद करोगे, अधर भाई !..." कहकर वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"उन्हें पागल बनाने का उपक्रम किया जा रहा था, क्यों ?...." द्वार पर से ही उपरोक्त बात कहकर विन्दु ने कमरे में प्रवेश किया और उसने उसे आग्नेय नेत्रों से देखा, फिर बोली—"इस प्रकार घुल-घुलकर क्या बातें हो रही थीं ?"

तारक ने उसके नेत्रों की ओर देखा तो सहम कर चुपचाप चला गया।

"कुछ नहीं यों ही इधर-उधर की बातें हो रही थी।" अधर ने तारक की रक्षा की।

"मगर इधर-उधर की बातों से अनर्थ हो सकता है !"

विन्दु की बातें अप्रकाश्यरूप से जिस अनिष्ट की ओर संकेत कर रही थी उसे बेचारा अधर समझ न सका।

विन्दु उसी के पास पलंग पर बैठ गई। आज बहुत दिनों के बाद अधर की सुधरी हुई अवस्था देखकर वह कितनी आनन्दित, कितनी आल्हादित एवं कितनी प्रसन्न थी ? ...मगर रह रहकर न जाने क्यों उसका मन शंकित हो उठता था।

"साँप की मित्रता अच्छी नहीं होगी, बाबू !" उसका संकेत तारक की ओर था।

अधर संकेत को समझ गया। बोला—"मगर उसे भी बीन की मधुर ध्वनि से बश में किया जा सकता है, विन्दु ! वह वास्तव में साँप नहीं। आश्चर्य तो यह है कि वह तुम्हें दोषी समझता है और तुम उसे ! मगर दोनों में से कोई दोषी नहीं। पारस्परिक मनोमालिन्य ही कुविचारों को स्थान देता है।"

"आप में मनुष्य को परखने की शक्ति नहीं, मगर ताऊ... ओह ! वे कितनी पैनी दृष्टि रखते थे !"

"तारक अब बहुत कुछ बदल गया है, विन्दु ! मेरे लिए रक्त दान क्या इसका यथेष्ट प्रमाण नहीं ?...."

"जो ?..." विन्दु चौंक पड़ी, मगर उसका यह चौंकना अधर न देख सका—"यह आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"स्वयं तारक ही कह रहा था..." अधर ने कहा।

विन्दु तारक की बेहयाई पर आश्चर्यचकित हो उठी...उफ् ! कितना धूर्त है यह दुराचारी तारक ! असत्य को सत्य कहकर उपस्थित करने में वह जरा भी नहीं हिचका—एक बार तो विन्दु के मन में आया कि वह अधर को सम्पूर्ण परिस्थितियों का ज्ञान करा दे कि उसे जीवन-प्रदान करने वाला रक्त तारक का नहीं, उसका रक्त है...परन्तु एक छोटी-सी बात के लिए अधर का मस्तिष्क में मन्थन की सृष्टि करना क्या उचित होगा ? सोचकर उसने अपना मुँह बन्द ही रहने दिया।

"तुम इधर बहुत सूख गई हो..." अधर ने विन्दु के शरीर का निरीक्षण करते हुए कहा।

विन्दु के मुख पर मीठी मुस्कान क्षणमात्र के लिए झलक कर विलुप्त हो गई। वह कुछ न बोली। किस मुख से किन शब्दों से वह प्रकट करती कि उसकी चिन्ताजनक अवस्था देखकर उसको मार्मिक व्यथा कितनी असहनीय पीड़ा होती है। उसी चिन्ता में उसके शरीर का सारा रक्त पानी बनकर सूख गया है—वह अस्थिपंजर मात्र रह गई है।

"मेरी बीमारी के दिनों में, कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?..." पूछा अधर ने, केवल उसके अन्तर की थाह लेने के लिए।

प्रत्युत्तर में विन्दु के दोनों मदभरे नयन उसकी आँखों से जा मिले, मानो वे उससे कह रहे हों—भला अपनी सबसे प्यारी वस्तु को कष्ट होते देखकर किसे कष्ट न होगा।

"रामू !....ओ रामू ! देख तो, दरवाजा कौन खटखटा रहा है ?" अधर ने रामू को आवाज दी।

रामू अपनी कोठरी में बैठा तम्बाकू पी रहा था। बड़बड़ाता हुआ उठा—"कौन है सार ! ई दुपहरिया बेला में दरवाजा खट-खटावत हव !" दरवाजे के पास पहुँचकर उसने दरवाजा खोलते हुए कहा—"कौन है रे ? बड़ा शान वाला बना है। दुपहरिया को भी चैन नहीं लेने देता ?"...मगर दरवाजा खुलते ही वह सन्न रह गया। उसने देखा—दरवाजे पर स्वयं नारायण काका खड़े हैं।

आज प्रातःकाल वे अखबार पढ़ने न आ सके थे, यहीं कारण था कि इस दोपहरी को उन्होंने कष्ट किया था। खैरियत यही हुई की रामू के शब्द काका सुन न सके, नहीं तो दो-चार थप्पड़ उसके मुंह पर अवश्य जा बैठते।

६

अधर चुपचाप अपने कमरे से बाहर निकल आया और ध्यान पूर्वक अँधेरे में देखने लगा, मगर कुछ स्पष्ट दिखाई न पड़ा। तो क्या कमरे में सोये-सोये उसने जो पदचाप सुना था, वह केवल उसका भ्रम था?

मस्तिष्क की गर्मी के कारण अधर को अभी तक रात में अच्छी तरह नींद नहीं आती थी। विन्दु, रामू और विमल आदि कभी के सो चुके थे। मगर अधर के नेत्रों में निद्रा लेशमात्र भी नहीं थी। कमरे का दीपक गुल था। अंधेरे में ही अधर अपने अन्धकारमय जीवन के विषय में चिन्तन कर रहा था कि दरवाजे पर किसी का पदचाप सुनाई पड़ा, मानों कोई दबे पाव उसके दरवाजे के सामने से होकर जनानखाने की ओर जा रहा है। कौन हो सकता है?— अधर सोचने लगा। फिर तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और दरवाजे के पास चला आया। उसने धीरे से दरवाजा खोला, मगर बाहर के घने अन्धकार में कुछ दीख न पड़ा।

हैं? फिर वही पदचाप?—अधर मन ही मन बुदबुदाया। धूमिल अन्धकार में उसकी आँखों ने एक काली आकृति को जनानखाने की ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुए देखा। अधर को कुछ शंका हुई।

आजकल इस घर में जो-जो रहस्यमय घटनाएँ हो रही थी, उन्हें देखते हुए उसकी शंका निर्मूल नहीं थी। वह दबे पाँव उस काली आकृति का अनुसरण करता हुआ विन्दु के कमरे की ओर बढ़ा, क्योंकि उस काली आकृति का लक्ष्य वही कमरा था।

विन्दु के कमरे के सामने पहुँचकर वह काली आकृति रुकी! एक बार उसने अपने चारों ओर देखा, मगर अधर को कदाचित् उसकी

आँखें देख न सकी क्योंकि वह अन्धकार में, दूर पर एक खम्भे की आड़ में छिपा हुआ उसकी गतिविधि देख रहा था।

विन्दु निश्चिन्त अपने पलंग पर सोई हुई थी। सहसा खट-खट की आवाज से उसकी नींद झटके के साथ उचट गई। उठ बैठी वह और उस आवाज को ध्यान से सुनने लगी। घर भर में निस्तब्धता का साम्राज्य छाया हुआ था, प्रकृति निश्चल थी एवं निश्चेष्ट।

इस अर्द्ध रात्रि की बेला में कौन उसका दरवाजा खटखटा रहा है? अधर ही होगा और कौन हो सकता है? यह सोचकर विन्दु ने आगे बढ़कर धीरे से दरवाजा खोला, परन्तु वह सन्न रह गई यह देखकर कि दरवाजे पर एक काली आकृति खड़ी थी, कम्बल ओढ़े हुए!

"घबड़ाओ नहीं विन्दु!...." उसने कहा, उसकी आवाज सुनते ही विन्दु चौंक पड़ी। वह था छली, कपटी, विश्वासघाती तारक!

"क्यों आये हो यहाँ?" विन्दु के स्वर में तीक्ष्णता थी, मगर उसपर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ।

वह धीरे से बोला—"इतने जोर से बोलोगी तो सारा घर जाग जायगा और तुम्हारी प्रतिष्ठा खतरे में पड़ जायगी..." कहता हुआ वह कमरे में घुस आया।

विन्दु क्षणमात्र में सब कुछ समझ गई....उफ! यह तारक तो उसे अपने हाथ की कठपुतली बनाता जा रहा है। वह उसके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोल सकती, अपनी इच्छानुसार वह एक कदम भी नहीं उठा सकती...उफ! कैसा निशाचर है यह तारक और कितना भयानक है उसका व्यक्तित्व?

तारक के कलुषित हृदय में, विन्दु की भोली प्रतिमा ने भूकम्प जैसी हलचल पैदा कर दी थी। वह उससे अपनी वासना की तृप्ति चाहता था। इसी अशुभ विचार से वह इस नीरव रात्रि में विन्दु के पास आया था।

विन्दु भी इस समय पूर्णतया उसके वश में थी। काली रात की

भयंकरता में वह तारक के साथ उस बड़े कमरे में एकाकी थी। यह दुनिया वाले—संसार के अधम प्राणी, समाज के ढोंगी कर्णधार उसकी उपस्थिति यहाँ देख लें तो उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी। यहा नहीं, स्वर्गीय ताऊ के मुँह पर अमिट कालिख पुत जायगी... यह बात फैल जायगी कि उन्होंने एक चरित्र-भ्रष्ट लड़की को घर में रखा था। हो सकता है, वे भी चरित्र भ्रष्ट रहे हों...विचारों के इस समूह ने उसे आपाद मस्तक झकझोर दिया।

वासनाविभूषित तारक बोला—"विन्दु..."

एकाएक रुक गया वह। उसका शरीर भय से सिहर उठा, क्योंकि उसकी उड़ती हुई दृष्टि दरवाजे की ओर जा पड़ी थी और वहाँ एक क्षण के लिए किसी की अस्पष्ट छाया उसे दीख पड़ी।

वह सोचने लगा—कौन हो सकता है? वह जो छिपकर उसकी बात सुनने का प्रयत्न कर रहा है? अधर के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता...अनर्थ हो गया! अधर ने अवश्य देख लिया है। एक क्षण तक तारक की मानसिक अवस्था सोचनीय रही। उसका हृदय जोरों से धड़कने लगा। उसके पैर थर-थर काँपने लगे। उसकी नसों में तेजी से रक्त दौड़ने लगा।

दरवाजे की आड़ में खड़ा अधर यह सब दृश्य देख रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि ऐसे समय यह तारक विन्दु के कमरे में क्या करने गया है? अधर अभी तक भाँप नहीं सका था कि तारक ने उसे देख लिया है। स्पन्दित हृदय से दरवाजे की आड़ में छिपा रहा और आगे क्या होता है, इसकी उत्सुकता से प्रतिक्षा करने लगा।

विन्दु दरवाजे की ओर पीठ करके खड़ी थी, अतः वह आसन्न विपत्ति से अनभिज्ञ थी। थोड़ी देर तक तारक किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। शीघ्र ही उसकी कुशाग्र बुद्धि ने उसका साथ दिया और उसने एक ऐसी भीषण बात सोच डाली कि जिसने सारा मामला ही पलट दिया और यही बात आगे चलकर, विन्दु के विनाश का कारण बनी।

तारक ने खाँसकर गला साफ किया। अधर के मन में कोई

विकार पैदा न हो, इस विचार से उसने मक्कारी का आश्रय लेकर जहर उगलना शुरू किया—"विन्दु ! जिसने तुम्हें ताऊ के बाद आश्रय दिया, उसे ही उजाड़ने का उपक्रम करना घृणित है .. बीच में बोलने का प्रयत्न न करो...मेरा अभिप्राय यह है कि अधर भाई के साथ छल करना ठीक नहीं। तुम्हारे साथ उन्होंने कितनी भलाई की है !....उन्होंने अपना स्वच्छ हृदय तुम्हें अर्पित किया, मगर वस्तुत: क्या उसके योग्य हो ? काश अधर भाई तुम्हारे हृदय की कलुषता जान पाते ?...आँख न तरेरो...देवता जैसे अधर भाई को छोड़कर तुम मुझसे प्रेम करना चाहती हो ? क्या तुम समझती हो कि तुम्हारी तरह मैं भी कृतघ्न बन जाऊंगा ? इस आधी रात को तुम मेरे कमरे में गई और मुझे जगाकर यहाँ आने को बाध्य किया। मुझसे कहा—मैं आगे जा रही हूँ, तुम दो मिनट बाद मेरे कमरे में आ जाना। मैंने सोचा अधर भाई की तबीयत खराब हो गई होगी, इसलिए तुम मुझे बुलाने आई हो। मैं यहाँ आया तो तुमने अपनी कलुष-भावना प्रकट करनी आरम्भ कर दी, परन्तु मैं हिमालय-सा अचल हूँ और भविष्य में भी रहूँगा..." कहते हुए तारक शीघ्रता के साथ बाहर निकल गया।

बेचारी विन्दु !...उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि यह दुष्ट तारक क्या-क्या बक गया है। वह प्रस्तरवत् खड़ी रही।

अधर यह सब सुनकर स्तब्ध रह गया। उसका हृदय हाहाकार कर उठा। उसके अन्त:स्थल में भीषण ज्वाला प्रज्वलित हो उठी ! अधर को सन्देह ने बुरी तरह ग्रसित कर लिया। वह सोचने लगा—उफ ? कैसी छली, कैसी कपटी है यह भोली-भाली लड़की ! इसका मुख जितना उज्वल है, हृदय उतना ही कलुषित ! तारक सच्चा है—और विन्दु ! कैसी पत्थर की तरह खड़ी है जैसे शरीर में जान न हो !... अवश्य दोष इसी का है...उफ रे, काली नागिन...!

अधर भयानक मानसिक वेदना से विह्वल हो गिर पड़ता यदि उसने दीवार का सहारा न ले लिया होता। एक बार तो उसने सोचा कि चलकर इस काली नागिन का गला घोंट दें, उसे इस दुनिया में रहने का कोई अधिकार नहीं...परन्तु तत्क्षण विचार बदल गया,

विन्दु पर उसका अधिकार ही क्या है ? वह ताऊ की धरोहर है।

उल्टे पाँव अपने कमरे में लौट आया। विन्दु को मालुम न हो सका कि अधर ने छिप कर सारी बातें सुन ली हैं। इस समय अधर की अवस्था सोचनीय हो रही थी। अभी तक उसके मस्तिष्क का तनाव पूर्णतया दूर नहीं हुआ था, इसलिए वह क्षणिक उत्तेजना से पागल-सा हो उठा था।

"दुनिया छलनामयी है!..." अधर के मुख से दीर्घश्वास निकल पड़ी।

यद्यपि तारक की बातें अधर को क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करने के लिए पर्याप्त थी फिर भी बातों की पुष्टि के निमित्त और अधर का विशेष विश्वासपात्र बनने के अभिप्राय से वह अधर के कमरे की ओर बढ़ा।

दरवाजे के बाहर रुककर उसने धीरे से पुकारा—"अधर भाई !

अधर सोया न था। दारुण मानसिक वेदना से वह बेचैन था। तारक की आवाज सुनते ही उसने दरवाजा खोला तो तारक को म्लान मुखाकृति लिये खड़ा देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया।

"क्या है ? ..क्या है तारक ?..." शीघ्रता से पूछा अधर ने।

तारक कमरे में आकर बैठ गया, बोला—"निराशा में आशा विलीन हो गई, अधर भाई। अगाध सागर का कूल अदृश्य हो गया है। वर्षा से फूली हुई नदी की उत्ताल तरंगों के प्रवाह में जैसे मैं बहा जा रहा हूँ। मुझे सहारा दो, अधर भाई ! तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो—भाई, पिता, सहायक...सब कुछ तुम्हीं हो..."

इस तरह की नाटकीयता पूर्ण अभिनय से कपटी तारक ने अधर को अपनी ओर खींच लिया। उस अविश्वासी का वह विश्वास कर बैठा। तारक की भाव-भंगिमा उस समय ऐसी थी कि उस पर विश्वास कर लेना कोई अनहोनी बात नहीं थी !

अधर को तारक के साथ पूर्ण सहानुभूति हो गई—वह समझ गया कि बेचारे तारक पर आज की घटना ने विशेष प्रहार किया है और इस समय विन्दु की छलनामयी प्रवृत्ति के विषय में ही कुछ कहने आया है।

"तारक !" वह कहने लगा—"तुम्हें क्या दुःख है ? तुम क्यों इतने उद्विग्न हो ?"

"यह न पूछो अधर भाई !...न पूछो इस बात को। मैं बताने में असमर्थ हूँ—सर्वथा असमर्थ ! मैं प्रातःकाल होते ही यहाँ से चला जाऊँगा।"

"क्यों आखिर किसलिये चले जाओगे तुम ?" अधर ने पूछा।

"मेरे यहाँ रहने से अनर्थ की सम्भावना है, अधर भाई !.... क्यों न मैं पहले से ही दूर हो जाऊँ ? मेरे चले जाने का मतलब तुम नहीं समझ सकते..."

"समझता हूँ, सब सुन चुका हूँ मैं—जान चुका हूँ..." अधर ने लम्बी साँस ली—"जिसे सोना समझा था, वह पीतल निकला—जिसे रेशम की डोर समझा था, वह साँप निकला।"

"देख चुके हो ?....सुन चुके हो...मगर इसमें मेरा जरा भी अपराध नहीं है। मैं निरपराध हूँ—निस्सहाय हूँ।" कहता हुआ तारक धड़ाम से अधर के पैरों पर गिर पड़ा।

अधर ने उसे उठाते हुए कहा—"उठो तारक, मैं जानता हूँ तुम निरपराध हो....तुम इतने व्यथित न हो। तुम्हारे चले जाने से मुझे बहुत दुःख होगा। तुम यहीं रहो, मेरे पास।"

"मुझे जाने दो अधर भाई !..." तारक बोला—"मैं सबके लिये काँटा हूँ।"

"ऐसा न कहो, तुम काँटा नहीं, काँटों में खिलने वाले सुन्दर गुलाब हो और वह नागिन है, विषैली नागिन !...दुःख है कि मैंने पहले तुम्हारी बात नहीं मानी....क्या कहूँ, अगर मेरा वश चलता तो मैं उसे अभी घर से निकाल देता, मगर ताऊ की आज्ञा !.... कैसे टाल सकता हूँ मैं उनकी आज्ञा ?"

"परन्तु ऐसी नागिन का घर में रहना ठीक नहीं अधर भाई !..." शह पाकर तारक खुल पड़ा।

"नहीं तारक, ताऊ के अन्तिम आदेश की अवहेलना करना मेरे वश की बात नहीं। स्वर्ग में उनकी आत्मा सन्तप्त होगी...." कहकर उसने एक दीर्घ श्वाँस छोड़ी और चुप हो गया !

अधिक छेड़ना उचित न समझ, तारक भी आज्ञा लेकर वहाँ से चला गया।

* * * *

उस दिन रातभर विंदु जागती रही, सोचती रही तारक द्वारा कहीं बातें !....कितनी भयंकर और कितनी अपमानजनक थी वे बातें, आखिर यह सब कहने-बकने में क्या उद्देश्य था उसका ?.... लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी समझ में कुछ नहीं आया....अवश्य शराब पी रहो होगी उसने और शराब के नशे में ही उलूल-जुलूल बक गया है।

विन्दु यही सब सोचती रही। सोचती रही कि इसका उल्लेख अधर से करना चाहिये या नहीं ?....खूब तर्क वितर्क के पश्चात् उसने यही निश्चय किया कि कहने से कोई लाभ न होगा, उल्टे अधर की मानसिक चिन्ता और बढ़ जायेगी। डाक्टर ने कहा है कि उन्हें मानसिक कष्ट देने वाली कोई बात न बताई जाय।

विवश होकर वह इस अपमानजनक घूँट को पी गई। परन्तु उसे क्या मालूम था कि परिस्थिति उसके सर्वथा प्रतिकूल कार्य कर रही है।

प्रातःकाल होते ही अधर विन्दु के कमरे में आया। एक बार ध्यानपूर्वक उसने उसके चेहरे की ओर देखा। काली कजरारी आँखें रात में न सोने के कारण लाल हो रही थीं। वह बोला—"आँखें लाल हैं तुम्हारी। रात में सोई नहीं क्या ?"

एक बार तो विन्दु के मन में आया कि वह सारी बात उगल दे, परन्तु डाक्टर के आदेश का स्मरण कर वह चुप हो रही, कह दिया—"रात भर सर में पीड़ा रही..."

अधर को अपने सन्देह का ठोस और सत्य प्रमाण मिल गया था। उसने रोषपूर्ण दृष्टि विन्दु पर डाली, फिर कमरे से बाहर हो गया।

अकस्मात आकर, एक दो प्रश्न पूछकर चले जाने से विन्दु के मन पर वज्र का-सा आघात हुआ। वह आपाद-मस्तक काँप उठी। घण्टों रो लेने के बाद भी उसका मन हलका न हुआ।

उस दिन, दिन भर अधर ने एक दाना भी मुँह में न रखा। विमल ने समझाया, तारक ने कहा, रामू ने प्रार्थना की, परन्तु अधर ज्यों का त्यों बैठा रहा और सोचता रहा छलनामयी विन्दु की बात !

उफ ! कंचन जैसे उज्ज्वल शरीर के अन्तराल में कितना विष भरा है ? कैसा भयंकर ! कितना मर्माहत करने वाला है उसका कपट-व्यवहार ! अधर का हृदय हाहाकार कर रहा था। उसके हृदय में दारुण ज्वाला धधक रही थी। जब वह विन्दु को देखता, उसका हृदय घृणा से भर जाता, उसकी नसें फड़क उठतीं, भवें तन जाती, नेत्र लाल हो उठते, फिर भी वह अपने हृदय पर नियन्त्रण रखे रहता। उसने विन्दु को जरा भी भला-बुरा न कहा।

अधर का व्यवहार विन्दु के प्रति दिन प्रतिदिन रूखा होता गया। विन्दु यदि उससे बोलने का प्रयत्न करती तो अधर उसकी बातों का उत्तर ही न देता। विन्दु को भी आश्चर्य होता था अधर का यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर। वह भी चिन्तानल में दग्ध होते-होते सूखती जा रही थी।

१०

अधर प्रातःकाल से ही जमींदारी का काम देखने के लिए दूर के एक गाँव में गया हुआ था। विमल भी उसके साथ था। घर पर विंदु अकेली थी। रामू मुख्य द्वार पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था।

अवसर अच्छा देख, तारक विंदु से बात करने के लिए उसके कमरे की ओर गया। उस समय विन्दु पलंग पर बैठी नाना प्रकार की चिन्ताओं से संघर्ष कर रही थी।

अकस्मात् तारक को देखकर वह उठ खड़ी हुई। बोली—"मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इस अशांति और गृह-कलह के पीछे स्वयं तुम्हारा ही हाथ है—मेरे भविष्य में आग लगाकर अब किस नये षड़यन्त्र की सृष्टि करने आये हो तुम यहाँ ?"

तारक मुस्कराता हुआ बोला—"मुझे क्षमा कर दो, विन्दु ! तुमने जितना नीच और पतित समझ रखा है, तना नीच और

पतित मैं नहीं हूँ। यदि सच पूछो तो इस घर में तुमसे हार्दिक सहानुभूति रखने वाला कोई है, तो वह मैं हूँ...तुमने व्यर्थ मुझपर सन्देह कर अपना मन छोटा कर लिया है ? तुम्हारे दुःख को मैं खूब अच्छी तरह समझता हूँ, मुझे तुमसे सहानुभूति है..."

"तुम्हारी सहानुभूति मुझे नहीं चाहिए, तुम अभी तुरन्त मेरे कमरे से बाहर निकल जाओ !"

"क्यों ?...आखिर क्यों ? कुछ तो समझाओ।"

"मुझे नहीं मालूम था कि तुम शराब भी पीते हो, उस दिन रात में तुम शराब पीकर आये थे--और जो मेरा अपमान किया था, वह क्या भूल जाने की बात है ?"

"शराब मैं नहीं पीता विन्दु ! धोखे से नारायण काका ने भांग पिला दी थी, इसलिए मस्तिष्क चक्कर खा रहा था। उस दिन रात में मैंने जो कुछ अनुचित बात कह दी हो, उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ— मुझे तो स्मरण भी नहीं कि मैंने क्या कह डाला था..."

बेचारी विन्दु को क्या मालूम था कि जिन बातों को तारक ने भंग की तरंग में कहने का बहाना किया है, वे उसके हृदय से निकली हुई और खूब सोच समझकर कहीं हुई बातें थीं और उन बातों ने ही ऐसा दूषित वातावरण उपस्थित किया है।

"तुम्हारी बातों पर मुझे तिलभर भी विश्वास नहीं, तुम्हें देखकर मेरा कलेजा कांप उठता है। अच्छा हो कि फौरन यहाँ से चले जाओ !..." विन्दु ने कहा। उसके मुखपर घृणा के भाव लक्षित हो रहे थे।

"मैं एक आवश्यक बात तुमसे कहने आया हूँ। वह बात है तो भयानक, परन्तु उसे बताकर तुम्हें सावधान कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ..." कहकर तारक थोड़ी देर रुका, फिर गला साफ कर बोला—"अधर भाई से तुम प्रेम करती हो यह मैं जानता हूँ...चौंको नहीं—प्रेम की भंगिमा छिपाये नहीं छिपती। शीशा लेकर अपने मदभरे नयनों की काली पुतलियों में देखो, उनमें किसकी मूर्ति अंकित है ? अधर की ही तो !..." तारक कहता गया, विन्दु सर नीचा किये सुनती रही—"मगर तुम्हारा यह प्रेम व्यर्थ सिद्ध होगा।

मृग मरीचिका के पीछे भागने से निराशा ही हाथ लगती है। तुम सुनकर आश्चर्य करोगी कि अधर भाई का तुम्हारे प्रति सारा प्रेम प्रदर्शन बनावटी है। भला भ्रमर किसी एक कली से सन्तुष्ट हो सकता है ?''

"चुप रहो तारक, तुम्हें भगवान की कसम ! अपना मुँह बन्द कर लो।" विन्दु के गले से टूटती आवाज निकली।

"सुनने से तुम्हारा ही लाभ होगा, विन्दु !...अधर भाई आज कल एक वेश्या के यहाँ जाने लगे हैं। दिन-रात उसी की सौंदर्योपासना में लीन रहते हैं। जमींदारी की आय का अधिकांश भाग उस वेश्या के यहाँ चला जा रहा है। ताऊ के धन का क्या यही सदुपयोग है ?...मैं सब कुछ जानते हुए भी अब तक चुप रहा, परन्तु अब तुम पर आनेवाला असह्य दुःख का विचार कर मुझे अपनी जबान खोलनी पड़ी है। तुम जिसे फूल समझती हो, वह काँटा है—जिसे देवता समझती हो, वह दानव है..."

"मैं कहती हूँ, तुम निकल जाओ यहाँ से..." विन्दु सिंहनी की तरह तड़प कर बोली।

"इसे मैं तुम्हारा दुर्भाग्य ही कहूँ तो अत्युक्ति न होगी...आँखें रहते हुए भी तुम देखना नहीं चाहती...अधर भाई तुमसे खिचे से रहते हैं—क्यों ?...क्योंकि तुम्हारे सौंदर्य पर अब उस वेश्या का सौन्दर्य हावी हो चुका है। वे उस सौन्दर्य पर भँवरे की तरह मँडरा रहे हैं अब तुम गली-गली ठोकर खाओगी, तुम्हारा स्त्रीत्व कामियों की धरोहर होगी। अधर भाई एक दिन मुझसे कह रहे थे कि जब तक विन्दु यहाँ है, मेरी दशा नहीं सुधर सकती। अच्छा हो कि जल्द ही यह बला दूर हो जाय..."

"या भगवान !...." विन्दु एकाएक करुण होकर बोली—"क्यों जले पर नमक छिड़कने आये हो ? क्यों व्यंग वाक्यों से चोट पहुँचाकर तड़पते हुए देखना चाहते हो ? ..मैं अन्धी नहीं। मैं समझ रही हूँ कि उनका हृदय मेरी ओर से हट गया है, फिर भी अपने हृदय से मैं विवश हूँ—"

कोई परिणाम न हुआ अनुभव कर वह खीझकर-चिढ़कर, पैर

पटकता हुआ वहाँ से चला गया।

तारक की बातों ने विन्दु पर गहरा प्रभाव डाला। वातावरण ऐसा विषाक्त हो गया था कि तारक की बातों पर अविश्वास करने का विन्दु के पास कोई कारण नहीं था। अधर का उससे दूर-दूर रहना, उससे रूखा बर्ताव करना, उसकी बातों का उत्तर न देना—यह सब क्या था? जितना ही विन्दु इस विषय पर सोचती, उतना ही उसका विश्वास तारक की बातों पर जमने लगता।

विन्दु पलंग पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी। प्रारम्भ से ही उसे कितनी ही प्रकार की यातनायें, व्यंग-प्रहार एवं कटुक्तियाँ सहन करनी पड़ी थी, परन्तु ऐसा रोना कभी न आया था। आज यह सुनकर कि वह वेश्या के यहाँ जाने लगे हैं, तो उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

रोते-रोते उसकी आँखें सूज आई। फिर भी उसके नयनकटोरों से अश्रुधारा बहती रही। इस बीच केवल एक क्षण के लिए अधर उसके पास आया था और उसे रोता देखकर सहानुभूति के स्थान पर एक व्यंगवाण छोड़ गया था—"इन कृतिम आँसुओं का मेरे समक्ष कोई मूल्य नहीं।"

ये आँसू कृत्रिम हैं!....हृदय के टुकड़े नेत्रों द्वारा प्रवाहित हो रहे हैं, फिर भी ये कृत्रिम हैं...हाय रे निर्दयी! काश!....तू विन्दु की पीड़ा समझ सकता! अभागी विन्दु तेरे लिए भार स्वरूप है?...जब तक वह यहाँ है, तब तक मेरी तबियत नहीं सुधर सकती। जब तक वह दूर नहीं होगी, तब तक तू सुखी नहीं हो सकेगा—यही न तेरे कहे हुए वाक्य हैं...कैसा निर्दयी है तेरा हृदय!

अवरुद्ध कण्ठ से वह बड़बड़ाई—"मैं तुम्हें दुःख न दूँगी—मैं स्वयं ही तुमसे दूर हो जाऊँगी। इस लांछन से, इस अपमान से, गली-गली भीख माँगना—नदी में डूब मरना कहीं अच्छा है...!"

० ० ० ०

रात्रि के भयानक सन्नाटे को बेधती हुई एक उलूक की कर्कश आवाज गूँज उठी। वृक्ष पर के घोंसले में से एक चिड़िया के चीखने की आवाज आई। विन्दु के कमरे का दीपक एक बार तेज

हुआ, फिर मन्द पड़ते-पड़ते एकदम बुझ गया। कमरे में सघन अन्धकार छा गया।

विन्दु सोई नहीं थी, जाग रही थी। उसका हृदय धड़क रहा था। रक्त-चाप बढ़ता जा रहा था। हाथ पैर काँपने लगे थे। मस्तिष्क फटा जा रहा था....

उठकर वह पलंग पर बैठ गई। दुस्सह विचार उसे मथित करने लगे। उसे यह घर जिसमें वह आज आठ महीने से रहती आ रही थी, छोड़ते हुए अपार दुःख हो रहा था, परन्तु विवश थी। उसे बाध्य होकर यह प्यारा-प्यारा घर छोड़ना पड़ रहा था।

सहसा अधर का सौम्य मुखमण्डल उसके नेत्रों के सम्मुख नृत्य कर उठा! वह सोचने लगी—आखिर इतने निष्ठुर वे क्यों हो गये? क्या अपराध हो गया है उससे?...भगवान जानता है कि मैं निर्दोष हूँ...,निर्दोष हूँ तो फिर आगा-पीछा क्यों? इस अपमान जनक जीवन से तो इस घर का त्याग ही करना उचित है...

निश्चय को दृढ़ता प्रदान कर वह झटके से उठी और उस कागज के टुकड़े को जो उसने पहले ही से लिख रखा था तकिये के नीचे रखा। फिर धीरे से द्वार खोलकर बाहर आई। धीरे-धीरे आगे बढ़ी। अधर के कमरे के सामने आकर रुकी। उसके नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक कर जमीन पर आ रहे।

आज वह इस घर को सदा के लिए त्याग रही है। अब इस जीवन में शायद ही उनसे भेंट हो सकेगी। विन्दु ने कान लगाकर सुना—अधर की साँस धीरे-धीरे चल रही थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। रात्रि की भयंकर अन्धकार नीरवता उत्पन्न कर रही थी....

विन्दु ने भूमि पर बैठकर अधर के द्वार पर अपना माथा टेका, फिर टूटते हृदय से आगे बढ़ चली। मुख्य द्वार पर आकर उसने धीरे से दरवाजा खोला और बाहर हो गई।

नीरव रजनी साँय-साँय कर रही थी। घोंसले में से पक्षियों के पर फटफटाने की आवाज कभी-कभी आ जाती थी। विन्दु ने अभी तक यह न सोचा था कि कहाँ जाएगी, क्या करेगी, कहाँ रहेगी? ऐसी

भयानक परिस्थिति में घर से बाहर निकल कर वह एक ओर बढ़ चली।

इस समय उसके हृदय में जो संघर्ष मचा हुआ था, वह वर्णनातीत था। फिर भी उसने सब यातनाओं को सहन करने का दृढ़-संकल्प कर विचारों से संघर्ष करती अँधेरे में बढ़ी जा रही थी।

लम्बे ओवरकोट से अपना सारा वदन छिपाये एक आदमी बिन्दु के पीछे-पीछे चला जा रहा था। वह कौन था? बिन्दु से उसका क्या सम्बन्ध था? कुछ पता नहीं। बिन्दु को जरा भी मालूम न था कि कोई उसका पीछा कर रहा है। वह तो अपने धुन में मग्न, आँखों से अश्रु धारा बहाती चली जा रही थी। उसके काँपते हुए पैर आगे की ओर बढ़ रहे थे—परन्तु मन बन्धन तुड़ाकर पीछे भाग जाना चाहता था—दूर, बहुत दूर—अधर के पास!

११

अधर जल्दी-जल्दी कपड़े पहन रहा था कि उसी समय मुँह लटकाये तारक ने कमरे में प्रवेश किया, बोला—"कहीं पता नहीं लगा अधर भाई! आस-पास अच्छी तरह खोज चुका हूँ—केवल उसका कमरा अभी नहीं देखा है, इसलिए चलकर उसका निरीक्षण कर लेना चाहिए?

"प्रातःकाल से ही उसका पता नहीं है...हुई तो क्या हुई? गई तो कहाँ गई? अवश्य भाग गई है। चली गई मुझे छोड़कर..." अधर किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति कुर्सी पर बैठ गया—"कहाँ मिलेगी वह? कहाँ खोजकरूँ उसको, तारक?"

"धैर्य रखो, अधर भाई!"

"उसके रहने पर बोलता न था, मगर अब उसके चले जाने पर उससे बोलने को जी चाहता है...हृदय की दारुण-ज्वाला बुझाये नहीं बुझती, तारक....! देखो, स्त्रियाँ कितनी निर्मम होती हैं? जाते समय उसे तनिक भी मेरा विचार न रहा—मुझसे दो बातें कर लेना भी उसने उचित नहीं समझा!"

"तितली एक जगह बन्द करके नहीं रखी जा सकती, अधर भाई!...

उसका आचरण ठीक नहीं था"'

"ऐसा मत कहो...मत कहो ऐसा..." दौड़कर अधर ने तारक के मुंह पर हाथ रख दिया—"सब कुछ सुन सकता हूँ, मगर उसके प्रति कोई घृणित शब्द नहीं सुन सकता—हृदय में भयानक पीड़ा उठ खड़ी होती है...मैं उसे अब भी चाहता हूँ, तारक !"

"उसे स्वप्न समझ लो, भाई !"

"स्वप्न समझ लूँ..? कैसे स्वप्न समझ लूँ ? तारक ! मेरे कुछ दिन, मेरी कुछ रातें किस आल्हादमय वातावरण में व्यतीत हुई है—तुम उसे नहीं जान सकते। किस मुँह से कहूँ कि उसके जाने से मुझे कितना दुख है—मेरे हृदय में कितनी व्यथा है !..." अधर कुर्सी से उठंग कर ठण्डी सांस लेने लगा। कुछ देर बाद वह बोला—"चलो उसका कमरा तो देखें .."

अधर लड़खड़ाते पैरों से विन्दु के कमरे में आया। तारक भी उसके पीछे था। देखा—कमरे का सामान विधिवत था, कोई अव्यवस्था न थी !

हताश अधर जाकर कुर्सी पर बैठ गया, बोला—"वह कोई वस्तु नहीं ले गई है, तारक ! वह अकेली ही गई है—ले गई है तो केवल एक वस्तु—मेरा हृदय, मेरी सुख शान्ति !... हाय विन्दु !" अधर हताश होकर कुर्सी से उठंग गया।

एकाएक तारक की दृष्टि विन्दु के पलंग पर जा पड़ी। उसने देखा, तकिये के नीचे एक पुर्जा मोड़कर सावधानी से रखा हुआ है। उसने लपककर वह पुर्जा उठा लिया और खोलकर पढ़ने लगा। चलते समय विन्दु ने अधर को लिखा था—"प्राणेश ! तुम्हें पाने की आशा अब निराशा मात्र रह गई है—मैं आप के मार्ग में रोड़ा बनकर नहीं अटकना चाहती—इसलिए जा रही हूँ, क्षमा करना।"

तारक ने पुर्जा मोड़कर अपनी जेब में रख लिया, अधर के पास आकर उसके मुँह पर हवा करने लगा। धीरे-धीरे अधर ने अपनी आँखें खोली। तारक ने कहा—"एक और बात है अधर भाई !"

"क्या है ?" अधर ने अपनी शिथिल आँखें तारक के मुँह पर गड़ा दी।

"जाते समय विन्दु ने यह पुर्जा लिखकर मेरे कमरे में छोड़ दिया था। सबेरे ही मुझे मिला है—यह देखिये!" कहकर तारक ने वह पुर्जा जेब से निकालकर अधर के हाथ में दे दिया—"इसे पढ़ने पर तुम्हें मालूम हो जायगा कि वह तुम्हें नहीं वरन् मुझे प्यार करती थी!"

अधर वह पुर्जा पढ़ते ही चिल्ला उठा—"दुष्ट! कुलटा!" वह उठकर खड़ा हो गया, उसके मिस्तष्क की गर्मी चरमसीमा तक पहुँच गई, उसने खर्र-खर्र कुर्ता धोती चीर डाला। जोरों से पागलों जैसी चेष्टा करता हुआ बोला—"हट जाओ तारक तुम मेरे सामने से?...यह क्या ताऊ का चित्र है?" जिसने एक अधम कुलटा को आश्रय दिया था, इसी ताऊ का चित्र...." अधर ने लपक कर ताऊ का बड़ा-सा आयल-पेन्ट चित्र उतार लिया और उसे जमीन पर पटक दिया। चूर-चूर हो गया उसका शीशा... "और यह किसका चित्र है? ह-ह-ह! जब मैं ही यहाँ नहीं रहा, जब हृदय ही न रहा तो यह रहकर क्या करेगा?....जा, तू भी जा!...विन्दु गई तू भी जा!..."

"पागल!...पागल हो गये हैं, अधर भाई!" बोलता हुआ, तारक बाहर आया। विमल, रामू, नारायण काका तथा अन्य गाँव वाले सब दौड़ पड़े। किसी तरह अधर को वश में किया गया। डाक्टर आया। उसने हृदय के रक्त की परीक्षा की। बोला—"इन्हें मेंटल डिसआर्डर हो गया है। अब इनका पागलपन छूटना असम्भव है। दवा से तो यह रोग दबा दिया जायगा, मगर तनिक-सा मानसिक आवेग होने पर इनकी पुनः यही अवस्था हो जायगी....आज इनसे अवश्य कोई मानसिक उत्तेजना की बात कही गई है। थोड़ी सावधानी रखा करें आप लोग!...."

अधर की सोचनीय अवस्था देखकर विमल चिन्तित था। वह जानता था कि इन सारे अनर्थों का मूल कारण है, एक मात्र तारक है, मगर तारक के विरुद्ध वह कैसे जबान हिला सकता है? तारक है जमींदार का भाई!...अधर भी आजकल इसका विश्वास करने लगा है—तो फिर किस प्रकार वह तारक के बिरुद्ध जा सकता है? वह

देख रहा था कि मानसिक संघर्ष के कारण अधर के शरीर में केवल हड्डियाँ मात्र ही शेष रह गई हैं—और यह देखकर उसे दुःख होता था, मगर वह लाचार था।

एक दिन भयानक चिन्ताओं में लीन अधर अपने कमरे में बैठा था। विमल भी उसके पास बैठा धैर्य बधा रहा था। कई दिनों से वह एक भेद की बात अधर से कहना चाहता था, मगर साहस सवरण नहीं कर पा रहा था। आज तारक कहीं गया हुआ था। अधर की दशा कुछ अच्छी थी। अतः वह बोला—"अधर कुमार, आज मैं तुम्हें एक भेद की बात बताना चाहता हूँ।"

अधर न जाने क्या सोच रहा था। विमल का बीच में कूद पड़ना उसे अच्छा न लगा—"भेद की बात अपने पास रखो, नहीं सुनना चाहता मैं!..." उसने रूखे स्वर में कहा।

अधर के इस उत्तर से विमल के हृदय को चोट पहुँची, मगर उसकी अवस्था का विचार कर उसने इस बात पर कुछ ध्यान न दिया। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वह पुनः बोला-"बाबू! तुम्हारे हाथ पर कितना सुन्दर सांप अंकित है। उसकी ओर देखने से तबीयत ही नहीं भरती! जी चाहता है कि उसे सदैव देखता रहूँ।"

अधर को आश्चर्य हुआ, भला उसकी कलाई पर गुदे हुए इस मामूली से सांप में ऐसा क्या आकर्षण है?—"लो देखो!..." अधर ने अपना हाथ विमल के आगे कर दिया—"जी भर कर देख लो..."

"हाँ ठीक ऐसा ही सांप...." विमल ने कहा।

"भाड़ में जाय ऐसा ही सांप!...." एकाएक अधर उत्तेजित हो उठा। अधर की उत्तेजना बढ़ जाने के भय से वह चुप रह गया। उसकी सांस जोरों से चलने लगी—"तुम जाओ!..." उसने विमल से कहा और विमल चुपचाप उठकर बाहर चला गया।

विमल के जाते ही तारक ने अधर के कमरे में प्रवेश किया। "आओ तारक! तुम्हारी ही प्रतिक्षा कर रहा था मैं—यह क्या? तुम बहुत प्रसन्न हो आज?....मैं भी बहुत प्रसन्न हूँ!....और यह... यह तुम्हारे हाथ में क्या है?...बोतल है?...कोई दवा है क्या

उसमें ?....'' अधर ने आते हुए तारक से एक साथ ही अनेकों प्रश्न कर डाले। तारक आकर मेज के पास खड़ा हो गया। हाथ की बोतल मेज पर रख दी। अधर ने उत्सुकतावश वह बोतल उठा ली। चिपकाये हुए कागज पर लिखा था—''व्हाइट लेबल !''

''यह क्या बला है तारक ?...कौन से रोग की दवा है यह ?...'' अधर ने हँसते हुये तारक से पूछा। आजकल वह तारक से बहुत प्रसन्न रहा करता था। तारक पर उसका अटल विश्वास हो गया था।

''तुम जानना चाहते हो, अधर भाई ! मगर...मगर... हाँ...हाँ,...उसका ढक्कन न खोलो !'' तारक के मना करने पर भी अधर ने बोतल का कार्क खोलकर उससे नाक लगा दी ! बोतल में से तीव्र गन्ध निकली। अधर ने चौंक कर बोतल का कार्क बन्द कर दिया। बोला—''बड़ी तीव्र औषधि है...मगर यह है क्या ?''

''अधर भाई !...'' तारक ने जेब से एक प्याला निकाल कर मेज पर रख दिया—''यह अमृत है ! शान्ति प्रदान करने वाल अद्भुत पेय है ! दुनिया का हर व्यक्ति इसे पीकर चिन्ता से कोसों दूर भाग जाता है....इससे बढ़कर शान्तिदायक कोई चीज नहीं है, अधर भाई !''

''ऐसी है यह !...'' तब तो यह मेरे बड़े काम की वस्तु है...''

''तुम दिन रात चिन्तानल में दग्ध रहते हो—इसे पीते ही तुम्हारी सारी मानसिक अशान्ति गायब हो जायगी। तुम थोड़े ही दिनों में नये आदमी बन जाओगे—जरा चलो तो सही, अधर भाई !...'' कहकर तारक ने बोतल की कार्क खोलकर प्याले में शराब भरी और अधर के आगे कर दिया।

''चखूँगा, जरूर चखूँगा !....अधर ने प्याला हाथ में ले लिया। यद्यपि तीव्र गन्ध से अधर की नाक फटी जा रही थी, फिर भी सने प्याला होठों से लगा ही लिया। घूँट, दो घूँट के पश्चात् वह समूचा पेय पदार्थ, दाहक बनकर उसके गले के नीचे उतर गया। नसों में ऊष्णता आ गई। सिर भन्ना गया।

''और लोगे अधर भाई ?''

"दो ! और दो ! खूब दो ! कितनी अच्छी चीज है यह !... सुधारस है न ? अमृत भी ऐसा मधुर, इतना गुणकारी न होता होगा...दो, भर दो !" अधर ने प्याला तारक के आगे कर दिया।

इस प्रकार दुष्ट तारक ने अपने स्वार्थसाधन के लिए अधर को, भोले-भाले अधर को, पगले अधर को खूब मदिरा पिलाई। मदिरा का दौर-दौरा तब तक चलता रहा, जब तक वह पूर्णतया बदहोश नहीं हो गया। पीते-पीते वह लुढ़क पड़ा कुर्सी पर। उसके मुँह से झाग निकलने लगा।

"क्या हो रहा है यह !...." विमल का कर्कश स्वर गूँज उठा। आँखें लाल-लाल किये हुए वह भीतर आया। तारक की आँखों में अपनी प्रज्ज्वलित आँखें डालकर वह बोला—"हरा-भरा घर उजाड़ते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? मैं अन्धा नहीं हूँ। मैं जानता हूँ, तुम प्रलय मचाकर तभी दम लोगे। मगर याद रक्खो, तुम अधर को बरबाद कर रहे हो ..और विन्दु ! वह साध्वी देवी तुम्हारे ही अत्याचार से उब कर चली गई..."

"क्या भनभना रहे हो जरा जोर से बोलो..." अधर ने नशे में झूमते हुए कहा।

"विमल !...." तारक सक्रोध बोला—"चले जाओ यहाँ से, यह न भूलो कि तुम्हारा अस्तित्व क्या है, तुम कौन हो ?"

"चले जाओ यहाँ से !...." गरज पड़ा अधर भी।

बेचारा विमल असहाय व्यक्ति की तरह तारक को घूरता हुआ, दाँत पीसता चला गया।

१२

अमरावती नदी शहर से दस मील की दूरी पर है। नदी पहाड़ी और छिछली होने के कारण उसका प्रवाह बहुत तीव्र है ! अधिक चौड़ी भी नहीं है, फिर भी दो सौ गज से कम न होगी।

नदी अधिकांशत: उन जंगलों एवं पहाड़ों के मध्य से प्रवाहित होती है, जिससे सारा मिर्जापुर जिला अच्छादित है। नदी के दोनों किनारों पर झाड़ियाँ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष एवं सघन द्रुमलताएँ हैं।

कोसों तक कहीं गाँव-गिराव नहीं। सन्ध्या होते ही शृगालादि के भयकर स्वर सुनाई पड़ने लगते हैं। यदा-कदा सघन वन से चीते तथा शेर भी आ जाते हैं। शहर अधिक दूर न होते हुए भी शहरी लोग यहाँ बहुत कम आते हैं। रास्ता भी नहीं है।

इस भूखण्ड पर शहरी वातावरण नहीं है। प्रकृति की छटा अनुपम एवं दर्शनीय है। विशाल पर्वतीय शिलाखण्डों और उसके चारों ओर बहते हुए स्वच्छ नदियों की जलधारा—यदि आप उन शिलाखण्डों पर बैठकर प्रकृति की रूप-राशि का दिग्दर्शन करें तो वाह-वाह कर उठेंगे।

नदी के उस पार, जहाँ कुछ विस्तृत उपत्यका है एवं नदी की धारा कुछ धीमी पड़ गई है, सैकड़ों छोटे-बड़े झोपड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं। पचासों वर्ष पूर्व माँझियों का एक समूह आकर यहाँ बस गया। ये झोपड़े उन्हीं के हैं। ऐसे घने जंगल में उन्होंने रहना क्यों पसन्द किया ?....यह मालूम नहीं ? फिर भी ये रहते थे बहुत आनंद-पूर्वक एवं संगठित होकर। इस समूह में सैकड़ों स्त्री-पुरुष थे। कभी-कभी दो चार माँझी शहर चले जाते और आवश्यक सामग्री खरीद ले आते।

उनके जीवन का साधन उनकी सैकड़ों नावें हैं। जिले के दक्षिण भाग से साल में हजारों लाखों रुपयों का अन्नादि शहर आता है। बीच में अमरावती नदी पड़ती है। अन्नादि के लादने और आदमियों के आवागमन से, इन माँझियों को नावों से अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त पैसे मिल जाते हैं। यह साधन यद्यपि रुपये जुटाने में अप्रयाप्त था, यद्यपि हर एक प्राणी के लिए नमक रोटी प्रदान करने का पर्याप्त था— इसी में वे प्रसन्न थे।

प्रतिदिन संध्याकाल को जब कि अस्तप्राय सूर्य की किरणें अमरावती के निर्मल जल में स्वर्णरेखा-सी चमचमा उठती एवं रक्त-रंजित प्रबोध, अपनी लालिमा व्योम मार्ग पर प्रदीप्त करता हुआ देदीप्यमान हो उठता, तो समूह के माँझी—स्त्री, पुरुष और बच्चे नदी के तट पर खड़े होकर सूर्य भगवान की आराधना करते एवं मन ही मन अपने कल्याण के लिए स्तुति करते ! सूर्य ही उनके

कुल देवता थे।

इस समूह का सम्बन्ध शहर से विशेष नहीं था, यही कारण था कि उनका रहन-सहन कुछ ऐसा था, जिन्हें शहरी लोग 'जंगलीपन' के नाम से पुकारते हैं। समूह का एक सरदार था। वही सारे समूह का संचालन करता था। अबाल-वृद्ध सभी उसका आदर करते थे, सभी उसकी आज्ञा मानते थे। एक नियम इस समूह का बहुत आश्चर्यजनक था—वह यह कि समूह के सरदार को आजन्म ब्रह्मचारी रहना पड़ता था, स्त्री-स्पर्श भी उसके लिये वर्जित था।

उनका विश्वास था कि वीर्य-रक्षा से ही मनुष्य में दैवी शक्ति सम्भव है। वीर्यवान मनुष्य ही पथभ्रान्त मनुष्यों को अपने वश में कर सकता है। जब मनुष्य में वीर्यशक्ति नहीं रहेगी तो वह आने वाली विपत्तियों का सामना नहीं कर सकेगा ? सरदार ऐसा ही बनना चाहिये जो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण कर अपना जीवन व्यतीत कर सकें। जिसमें इतना साहस हो कि आकस्मिक विपत्तियों में भी धैर्य के साथ सारे समूह का संचालन कर सके।

सरदार 'झुरू' ऐसा ही था। अवनूस-सा काला, दैत्य-सा बलवान ! पर्वताकार शरीर, भयंकर आकृति, भय उत्पन्न कर देने वाली भूरी-भूरी प्रज्वलित आँखें एवं चेहरे पर उगी हुई लम्बी-लम्बी मूछें—जो भी देखता उसे, भय से काँप उठता। जब वह बोलता तो ऐसा मालूम होता कि बादल गरजा हो—जब वह चलता तो ऐसा लगता कि पर्वताकार काला नरपिशाच चला आ रहा हो।

उपरोक्त भयंकरता होते हुए भी उसका हृदय निर्मल था ! न्याय एवं सदाचारिता का वह कट्टर अनुयायी था। बाल ब्रह्मचारी होने के कारण उसकी मुखाकृति पर तीव्र तेज विराजमान था। समूह की सब स्त्रियों को वह माँ-बहन के समान समझता था।

शरद्ऋतु की रात्रि थी ! चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित प्रकाशमान हो उठा था। चरु-चंद्रिका में घास पर पड़ी हुई ओस की बूँदें मोती सी चमक रही थी। जाड़े से ठिठुर कर मानव जगत कम्बलों के नीचे आराम कर रहा था। मगर बेचारे माँझियों को इतना सुख कहाँ ? वे अपने झोपड़ों में कथरी के नीचे पड़े हुये किसी

तरह शरीर को गरम रखने का प्रयत्न कर रहे थे। अमरावती नदी, उनके झोपड़े से केवल दस हाथ की दूरी पर मन्दगति से बहती थी।

सरदार झुरू की आँखों में अभी तक नींद नहीं थी। अपने विशाल काले शरीर पर भेड़ के बालों का बना हुआ एक मोटा कम्बल ओढ़े, वह चारपाई पर बैठा था और खिड़की की राह अमरावती नदी के स्वच्छ जल में चारु-चंदिका का कल्लोल देख रहा था। माँझी, समुदाय उस समय निद्रामग्न था। प्रकृति निस्तब्ध थी। पेड़-पल्लव निश्चल थे। नदी की द्रुतगामी धाराएं इस समय बहुत ही मन्दगति से प्रवाहित हो रही थी।

सरदार झुरू नदी में बह कर जाती हुई कोई वस्तु देखकर चौंक पड़ा। ऐसा चौंका कि चारपाई से उठकर खिड़की के पास आ खड़ा हुआ और ध्यानपूर्वक उस अस्पष्ट वस्तु को देखने लगा।

क्या है वह—कौन सी वस्तु बही जा रही है?—ओह! यह तो कोई आदमी जैसा प्रतीत होता है—उसकी रक्षा करनी चाहिये उसे! वह मन ही मन सोचता हुआ उठ खड़ा हुआ। धीरे से झोपड़े का दरवाजा खोला इस तरह कि जरा भी आवाज न हो। बगल वाले झोपड़े में ही सरदार का मुँहलगा रघुवा रहता था। वह सरदार को बहुत मानता था। सरदार ने उसके दरवाजे पर आकर पुकारा—"रघुवा! ओ रग्घू!..."

रघुवा गहरी नींद में सोया था, मगर सरदार की आवाज कान में पड़ते ही वह उठ खड़ा हुआ और लपककर उसने झोपड़ी का दरवाजा खोला। सरदार को कम्बल ओढ़े दरवाजे पर खड़ा देखकर, उसे अति आश्चर्य हुआ।

"क्या है?...बात क्या है सरदार?..." पूछा उसने!

"मेरे साथ आ!..." सरदार ने कहा और नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ चला। रघुवा ने भी पालतू कुत्ते की भाँति सरदार का अनुसरण किया।

झोपड़ी से दो फर्लाङ्ग की दूरी पर आकर सरदार रुका और नदी की ओर उँगली उठाकर बोला—"देख तो, क्या है वह!"

"कहाँ सरदार? मुझे तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता!" रघुवा

आश्चर्य से बोला !

"ध्यान से देख उल्लू का पट्ठा ! देख नदी की बीच धारा में— मुझसे दस साल छोटा है, फिर भी इतनी नजदीक की चीज नहीं देख सकता...."

"ओह, अब देखा ! मगर तुम्हारा मतलब क्या है, सरदार ?..." पूछा रघुवा ने !

"वह कोई आदमी है रे..."

"आदमी नहीं, कोई सूँस होगा सरदार।"

"चुप रह ! कहकर सरदार फिर किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगा, क्योंकि जिस वस्तु को देखकर वह इस प्रकार चिन्तित हो रहा था, वह बहते-बहते आगे निकल गई थी। सरदार जानता था कि नदी में कूद कर उसे पकड़ना आसान नहीं हैं, क्योंकि वह वस्तु बहाव की ओर बही जा रही थी। उसे पकड़ने के लिए यदि वह उसी जगह नदी में कूद पड़ता तो उसे कदापि न पकड़ सकता था, वह बहती हुई बहुत आगे निकल जाती। यही सोचकर सरदार किनारे ही किनारे उसको देखता दौड़ चला।

एक मील आगे जाकर रुका वह ! उसने देखा आती हुई वस्तु अभी दो फर्लाङ्ग पीछे है। सरदार ने जोरों से हाँफते हुए रघू से कहा—"बस ! यहीं नदी में उतरना ठीक होगा। बीच धारा में पहुँचते, पहुँचते वह चीज भी बहती हुई पास पहुँच जायेगा।"

"ऐसा साहस न करो सरदार ! बर्फ जैसा पानी और यह कड़कड़ाती हुई सर्दी—जाने दो सरदार" हाँफता हुआ रघुवा बोला।

"हूँ !..." सरदार ने तिरछी आँखों से रघुवा की ओर देखा।

बेचारा रघुवा चुप हो गया। उसने अपना कम्बल उतार कर रघुवा के हाथ पर रख दिया। उसकी बलिष्ट देह नग्न हो गई। उसने दोनों कान छूकर कुल देवता का स्मरण किया, पुनः घुटनों के बल बैठकर अमरावती नदी का ठण्डा जल मस्तक से लगाया—और दूसरे ही क्षण छपाक से नदी में कूद पड़ा।

सरदार बह चला मंझधार की ओर। अपने दैत्याकार काले

शरीर से लहरों को चीरता हुआ वह तीर की तरह आगे बढ़ा। रघुवा किनारे पर खड़ा, साँस रोके, सरदार का वह असीम साहस देख रहा था।

सरदार मँझधार में पहुँच गया। वह वस्तु भी आकर उससे उलझ पड़ी। रघुवा चिल्ला पड़ा—"अरे, सूँस ही है, मैं कहता था सरदार से कि...नहीं, सूँस नहीं है—उस्ताद ने उसे पकड़ लिया है....चले आओ सरदार! शाबास!"

उस वजनी वस्तु को पीठ का सहारा दिये हुये, तैरते-तैरते सरदार किनारे आया और धीरे से भूमि पर रख दिया उसे। दृष्टि पड़ते ही रघुवा आश्चर्य से चिल्ला पड़ा—"यह तो स्त्री है सरदार तुमने इसे छू लिया। गजब हुआ! तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत..."

"चुप रह पाजी!...गरजा सरदार—"असहायों की सहायता करना हमारी परम्परा है" और सरदार की दृष्टि उस स्त्री पर स्थिर हो गई।

वह, चेतनाहीन थी। न जाने कितनी दूर से पानी में बहती हुई आ रही थी। उसकी अवस्था बहुत कम थी। यौवन-रश्मि उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर प्रभा बिखेर रही थी। सरदार चुप खड़ा था—उसकी चिन्ताजनक अवस्था एवं देदीप्यमान सौन्दर्य देखता हुआ!

"इसमें जान भी है या नहीं?" रघुवा ने पूछा।

सरदार मानों सोते से जगा! उसने उस स्त्री को भूमि पर चित लिटा दिया और आहिस्ते से उसकी चोली फाड़ दी! उसके हृदय पर हाथ रखा—देखा, मंद गति से स्पन्दन हो रहा है। यद्यपि सरदार उस स्त्री के शरीर का सबसे कोमल एवं विचलित कर देने वाले अङ्ग का स्पर्श कर रहा था, फिर भी उसके शरीर में किसी प्रकार का कम्पन नहीं हुआ—न ही उसकी नसों में तनाव हुआ।

"जीवित है अभी!..." सरदार ने कहा।

उसने उसे भूमि पर औंधा लिटा दिया और उसके पैरों को ऊपर नीचे करने लगा। थोड़ी ही देर में युवती के पेट का सारा पानी बाहर निकल आया। रघुआ तब तक जंगल से किसी पेड़ की

पत्ती ले आया और उसका रस निचोड़ कर युवती के मुँह में डाल दिया।

सरदार एक चट्टान पर बैठकर उसके स्वस्थ्य होने की प्रतीक्षा करने लगा और रघुवा अपनी स्वल्प बुद्धि के अनुसार उस चेतनाहीन युवती के उपचार में संलग्न हो गया।

तीन घण्टे के अविराम परिश्रम ने उस युवती को चेतना प्रदान की। उसने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोली, और आश्चर्य चकित मुद्रा में उठकर बैठ गई।

सहसा उसकी दृष्टि काले कलूटे सरदार पर जा पड़ी। उस दैत्याकार शरीर को देखकर वह चिल्ला पड़ी जोरों से।

"घबड़ाओ नहीं!" सरदार ने गम्भीर वाणी में कहा और उठकर उस युवती के पास आ खड़ा हुआ। सान्त्वनापूर्ण स्वर में बोला—"बताओ, तुम कौन हो और कैसे इस दुर्दशा को प्राप्त हुई?"

सरदार के स्वर में मधुरता का आभास पाकर युवती का भय कुछ कम हुआ मगर सरदार के प्रश्नों का उत्तर न दे सकी। उसकी भाव-भंगिमा कुछ विचित्र प्रकार की थी और उसे देखने से यह ज्ञात हो रहा था जैसे वह अपने आप तक को भूल गई है।

"यही बात तो आप लोगों से मैं पूछना चाहती हूँ कि मैं कौन हूँ? कहाँ रहती हूँ, आप लोगों ने मुझे कहाँ पाया?...." उस युवती ने कुछ न जानती हुई-सी भंगिमा में पूछा।

"हम लोग माँझी हैं..." रघुवा बोला—"ये हमारे सरदार हैं। इन्होंने ही तुम्हारी जान बचाई है। तुम इसी नदी में चेतना-हीन बही जा रही थी...."

"नदी में बही जा रही थी?...क्यों?...किसलिये नदी में बही जा रही थी?...."

"यह तो तुम्हीं जानो..."

"मुझे कुछ याद नहीं पड़ता!..." युवती ने अपना माथा पकड़ लिया और बहुत देर तक कुछ सोचती रही, परन्तु उसे कुछ भी याद न आया तो बोली—"मैं अपना नाम पता बताने में असमर्थ हूँ... मुझे याद नहीं कि मैं कौन हूँ, और कहाँ रहती थी।"

"विचित्र बात है...." रघुवा बोला।

"ऐसा होता है..." सरदार गम्भीर होकर बोला—"मस्तिष्क पर आकस्मिक चोट लग जाने से कभी-कभी मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति खो बैठता है। वह भूल जाता है अपने व्यतीत जीवन की बात। ठीक यहां बात इसके साथ भी हुई जान पड़ता है। नदी में गिरते समय किसी प्रकार इसके मस्तिष्क के भीतरी भाग में आकस्मिक तीव्र आघात पहुँचा है। यद्यपि इसके मस्तिष्क की चोट बाहर से अप्रत्यक्ष है, फिर भी आन्तरिक अवश्य है।"

"यह कैसे हो सकता है, सरदार ?...." रघुवा ने पूछा।

"हो सकता है !" सरदार ने कहा—"जहाँ तक मुझे विश्वास है इसकी स्मरण शक्ति शीघ्र नहीं लौटेगी। याद नहीं तुझे, चार साल पहले सुक्खन के सर में चोट लग गई थी, तो वह अपना सुध-बुध खो बैठा था, किसी को पहचानता ही न था, मगर दो साल बाद जाने कैसे उसकी भूली हुई याद लौट आई...."

"सुक्खन की बात न करो सरदार ! वह कितना भयानक पशु है। वह तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु है ! समूह में रहते हुए भी तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना करता है...अपने को धन्ना सेठ और गामा पहलवान समझता है, वह !...." रघुवा ने कहा।

"तुम्हारी तबीयत अब कैसी है ?..." सरदार ने उसकी बात पर ध्यान न देकर युवती से पूछा।

"एकदम ठीक है..." युवती बोली—"मगर सिर रह-रहकर चक्कर खा रहा है।"

"बड़े धर्म-संकट में पड़ गया हूँ, रग्घू !" विवशतापूर्ण स्वर में बोला सरदार—"इसे बचाया है तो निस्सहाय छोड़ देना अमानवीय कार्य होगा ! संसार में इसका है कौन ?....यह कुछ जानती भी नहीं। ऐसी अवस्था में इसकी ओर से आँखें फेर लेना ठीक न होगा—यह बेचारी कहाँ जायगी ? क्या करेगी रग्घू ?"

"मगर तुम इसे अपने पास रख कैसे सकते हो, सरदार ? तुम ब्रह्मचारी हो, लोग तुम पर छीटाकशी करेंगे !...तुम पद से पदच्युत कर दिये जाओगे...." रघुवा चिन्तायुक्त स्वर में बोला।

सरदार हताश स्वर में बोला—"यही तो मैं भी सोच रहा हूँ, रग्घू ! मगर बुद्धि कोई काम नहीं करती है। मैं ब्रह्मचारी हूँ, फिर भी इसकी रक्षा का उपाय तो कुछ करना ही होगा..."

कहकर वह विचारों की गहराई में डूब गया। सहसा ही प्रसन्न होता हुआ बोला—"समूह के किसी आदमी के संरक्षण में इसे रख दिया जाय तो ?..." सरदार ने कहा।

"नहीं यह विचार युक्तिसंगत नहीं !..." रघुवा दृढ़ स्वर में बोला—तुम जानते हुए भी अनजान बन रहे हो सरदार ! समूह का प्रत्येक व्यक्ति वासना का दास है। इसे समूह के किसी आदमी को सौंपना ठीक न होगा। इसकी यौवन-प्रभा देखकर कोई भी इसकी यौवन-निधि को नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। मुझे समूह के किसी आदमी के चरित्र पर विश्वास नहीं !"

"तो...." सरदार धम्म से बगल की चट्टान पर बैठ गया।

"सरदार ! मेरी बात मानो तो इसे अपने पास रखो।"

"यह कैसे हो सकता है, रग्घू ?"

"इसे पुरुष-वेष में रखो सरदार ! अवस्था इसकी बहुत कम है। मरदाने कपड़े पहनने पर बिलकुल छोकरे-सा लगेगी। प्रातःकाल लोगों के पूछने पर कह देना कि इस लड़के को नदी में डूबने से बचाया है..."

"मगर इस प्रकार इसे कब तक बचाया जायेगा ?"

"कुछ दिनों तक तो बचाना ही होगा ! जब इसके घरवालों का पता लग जायगा तब इसको चुपचाप उन्हें सौंप देंगे। समूह के किसी आदमी को पता भी न लगेगा..."

सरदार कुछ देर तक सोचता रहा। फिर वह युवती से बोला—"सुना तुमने ?...तुम्हारी क्या राय है ?"

"मैं क्या कहूँ ?...आपकी शरण में हूँ। जो भी व्यवस्था आप करेंगे, मुझे स्वीकार होगा !..." करुण स्वर में उसने अपना मत व्यक्त कर दिया।

"तुम्हें मेरे साथ पुरुष-वेष में रहना होगा। अपने किसी कार्य, किसी भाव-भंगिमा से यह न प्रकट होने देना होगा कि तुम स्त्री हो...

रघुवा ! चुपके से अपने झोपड़े में चला जा और अपने लड़के की धोती निमरतीन लेकर जल्द आ..." सरदार ने कहा—"देख ! सुक्खन को जरा भी इस बात की भनक न लगे। नहीं तो वह आफत मचा देगा। वह मेरा शत्रु है...मुझसे जलता है वह...बहुत धीरे-धीरे जाना। आवाज न हो..."

रघुवा चला गया तो सरदार ने देखा कि उस युवती का देदीप्यमान सौन्दर्य, चारु-चन्द्रिका में और भी विकसित हो उठा है।

१३

महत्वाकांक्षा ही सफलता की जन्म-दात्री है, परन्तु कभी-कभी यही महत्वाकांक्षा सर्वनाश भी कर डालती है। कभी मनुष्य को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है और कभी उसे घृणित से घृणित दुष्कर्म करने के लिए बाध्य करती है। अच्छी वस्तु की कामना भले कर्म की महत्वाकांक्षा लाभप्रद हो सकती है, परन्तु जब मानवीय-हृदय में बुरी भावना, घृणित महत्वाकांक्षा प्रविष्ट हो जाती है तो प्रलय मचा देती है।

तारक धूर्त था और उसकी संगति भी असाधु लोगों से थी। उसके हृदय में एक प्रवल आकांक्षा दिन-रात उद्वेलित हो रही थी और वह थी अधर की विशाल जमींदारी पर अपना आधिपत्य जमाकर, अपार सम्पत्ति द्वारा नश्वर जगत की आनन्द दायिनी वस्तुओं के आनन्द लेने की। इसी घृणित आकांक्षा के वशीभूत होकर वह विन्दु, अधर, विमल आदि का नाश करने का षडयन्त्र रच रहा था।

अपनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं क्रूर हृदय की प्रेरणा से वह सदैव कोई न कोई षड़यन्त्र रचने की युक्ति सोचा करता था। कालचक्र से प्रेरित होकर अधर भी उसका विश्वास करने लगा था। परिस्थिति तारक के सर्वथा अनुकूल कार्य कर रही थी।

आज प्रातःकाल से ही शीत अधिक पड़ रही थी, फिर भी तारक को सैर को सूझी। अपने दो-तीन मनचले साथियों के साथ वह ताँगे पर कोलतरा की ओर घूमने निकल पड़ा।

'कोलतरा' शहर से दो मील दक्षिण की ओर एक छोटी-सी पहाड़ी पर रमणीक स्थान है। शहर के कितने ही रईस गर्मी के दिनों में वहाँ सैर करने जाते हैं, परन्तु जाड़े के दिनों में तो वहाँ आदमी की छाया तक दिखाई नहीं पड़ती। कभी-कभी एकाध धोबी "छियो धोबी के लाल हो...." गाते हुए चले आते हैं और 'कोलतारा' में शहर भर का मैल धोकर बहा देते हैं।

ताँगा मन्थर गति से कोलतरा की ओर बढ़ रहा था। तारक तथा उसके दोनों मित्र किसी अनावश्यक विषय को लेकर वादविवाद कर रहे थे और उधर पूर्व-परिचित ताँगा वाला घोड़े की पीठ पर चाबुक फटकारता हुआ बड़े लोच से गा रहा था—"कहि दे बलमुआ से..." मालूम होता है, उसके गीत भण्डार में इस गाने को छोड़कर दूसरा गाना था ही नहीं।

"लो कोलतरा तो आ गया!...." तारक ने अपने मित्रों से कहा।

"इतना सुनसान क्यों है? एक आदमी भी नहीं दीखता!..." एक मित्र ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"गर्मी का दिन तो है नहीं कि शहर के लोग यहाँ जी बहलाये चले आयें" दूसरा मित्र बोला—"इस शरद ऋतु में कौन इस पहाड़ी पर आना चाहेगा...मगर भाग्य उदय हुआ दृष्टिगोचर होता है...वह देखो, ताल के किनारे कपड़े धोती हुई वह रंगीली धोबिन!..."

मित्रों ने उस ओर देखा। एक कमसिन धोबिन तन्मयतापूर्वक कपड़े धोने में व्यस्त है! उस सुनसान पहाड़ी पर वह अकेले ही थी। ताँगे को वहीं रुकते देखकर, उसने उस ओर देखा।

"है तो अच्छी दोस्त! चलो उससे बातचीत कर, दिल बहलायें।"

"हाँ....हाँ...चलो!...."चलते-चलते तारक एकाएक रुक गया।

"क्या बताऊँ?..." तारक कहने लगा—यह तो मेरे गाँव के धोबी हरिया की बहन सुखिया है। चलो लौट चलें..."

"लौट क्यों चले? तुम्हारे गांव की है, तब तो और भी अच्छी

बात है....'' और तीनों मित्र ताल के किनारे उसके पास ही एक शिलाखण्ड पर बैठ गये।

सुखिया जरा चंचल प्रकृति की थी। अपने गाँव के तारक बाबू को देखते ही वह मुस्कुरा पड़ी। तारक ने उसकी भोली मुस्कुराहट का तात्पर्य कुछ दूसरा ही निकाला। उसने सन्तोष की साँस लेते हुए पूछा—"क्यों रे, कपड़ा पटकना क्यों बन्द कर दिया ?"

"तुम आये हो न बाबू इसलिए..."

"तू आज अकेली कैसे आयी ? हरिया कहां है ?"

"क्या कहूँ बाबू ! भैया दो तीन दिन से बीमार हैं। मैं ही अकेली कपड़ा धोने आती हूँ। पेट के लिये जुगाड़ करना ही पड़ता है...."

सुखिया के इन शब्दों में जो हार्दिक वेदना निहित थी उसे इन दुराचारी पापात्माओं की आँखों में परखने की शक्ति कहाँ थी ?

सुखिया की बात सुनकर तारक मुस्कुराता हुआ बोला—

"पेट भरने के और भी साधन हैं, सुक्खी !"

बता दो न बाबू ! तुम्हारा भला होगा..."

तारक ने जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर सुखिया की मुट्ठी में ठूस दिया ! बोला—"कौन ऐसा है जो तेरे यौवन पर तरस न खायेगा..."

सुखिया अवाक् रह गई, उसके अन्तिम वाक्य को सुनकर। उसके हृदय-प्रदेश में क्षण-प्रतिक्षण दुश्चिन्ताओं के बादल आ-आकर मडराने और छिन्न-भिन्न होने लगे। वह तारक के कलुषित भावना को ताड़ गई थी।

अभी वह कुछ सोच भी न पाई थी कि तारक की कलुषित भावना जाग्रत हो उठी और उसने लपक कर सुखिया को अपने अंक-पास में कस लिया। छटपटा उठी वह वेचारी जाल में फसे हुए पक्षी की भाँति। वह इसे चट्टानों के पीछे खींच ले गया।

थोड़ी देर में आँखों से नीर बहाती—अस्त-व्यस्त कपड़ों को ठीक करती वह अपने स्थान पर लौट आई। उसकी यौवन नीधि लुट चुकी थी।

* * * *

प्रात:कालीन बाल-सूर्य के खिलखिला उठते ही, मानव-जगत में जीवन का संचार हुआ। अमरावती नदी की वेगवान धाराओं के साथ भुवन भास्कर की किरणें कल्लोल करने लगी। माझियों के समूह में खलबली मच गई। जिसे देखो वही, सरदार झुरू के झोपड़े की ओर दौड़ा जा रहा है। देखते देखते सरदार के दरवाजे पर अपार भीड़ लग गई।

सुक्खन अभी अभी सोकर उठा था, अन्त में एक को बुलाकर उसने पूछा—"क्या है रे रघुवा ?"

"भैया !..." रघुवा गर्वीले स्वर में बोला—"सरदार ने आज आधी रात को नदी में बेहोश बहता हुआ एक लड़का पाया है। जाकर देख आओ तुम भी !"

सुक्खन आकर सरदार के दरवाजे पर खड़ा हो गया। भीड़ को हटाकर उसने भीतर देखा—एक चौदह वर्ष का सुन्दर लड़का सरदार के पास बैठा है। सर पर पगड़ी, शरीर पर निमस्तीन और कमर में धोती है।

सुक्खन झोपड़ी में घुस आया था। उसकी प्रज्वलित आँखें सरदार के चेहरे पर पड़ी। बोला—"सरदार ! छोकरे को रघुवा के बेटे की निमस्तीन, धोती और पगड़ी पहनने की क्या आवश्यकता थी। यदि मेरी आँखें धोखा नहीं देती तो मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि ये रघुवा के बेटे की ही है।"

"तुम ठीक कहते हो..." सरदार संयत स्वर में बोला। परन्तु भीतर ही भीतर उसका हृदय घबड़ाने लगा था कि सुक्खन कहीं वास्तविक भेद तो नहीं जान गया है ?—उहँ ! जान भी गया है तो क्या कर लेगा। दृढ़ स्वर में वह बोला—"इसके पास कपड़े नहीं थे..."

"इसके पास कपड़े नहीं थे ?..." सुक्खन क्रूरतापूर्ण हँसी हँसकर बोला। वह सरदार का प्रतिद्वन्दी था। सरदार से जलता था—"तो क्या यह नग्न अवस्था में ही पानी में बहा जा रहा था।"

"तुम..." गरज पड़ा सरदार—"तुम मुझसे जिरह करने की

धृष्टता करते हो ?...चले जाओ यहाँ से...निकल जाओ !..." सरदार ने दरवाजे की ओर ऊँगली दिखाकर कहा।

सुक्खन बिना एक शब्द बोले झोपड़े के बाहर हो गया। विवाद को विशाल रूप देना उसने पसन्द न किया, क्योंकि सरदार के आसुरी शक्ति से वह भली प्रकार परिचित था।

सरदार ने उस लड़के का नाम कल्लन रख दिया। वह सरदार के साथ ही रहने लगा। एक दिन रात्रि को जब कल्लन सोने की तैयारी कर रहा था, सरदार उसके पास आकर खड़ा हो गया और उसके सामने एक गिलास बढ़ाता हुआ बोला---"लो, इसे पियो..."

"क्या है यह, सरदार ?..." कल्लन ने पूछा।

"यह विष है ! जहर है ! पौधे के पत्तियों का रस है। इसे पी लो, डरो नहीं। मर नहीं सकते तुम, परन्तु इसे पीते ही तुम्हारे अवयवों में शिथिलता आ जायगी ..."

"मैं नहीं पीयूँगा, सरदार !" कल्लन ने कहा।

"पीना पड़ेगा..." सरदार कठोर स्वर में बोला—"वासना का दमन करना ही होगा..."

कल्लन ने उस गिलास का पदार्थ अनिच्छा से गले के नीचे उतार लिया। उस पर शिथिलता और बेहोशी सी आने लगी और थोड़ी ही देर में वह धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा।

सरदार ने उसे उठाकर चारपाई पर लिटा दिया और स्वयं भी जाकर लेट रहा।

* * * *

निकलने को तो बिन्दु घर से निकल गई मगर एक प्रश्न विकट रूप से उसके सामने आ खड़ा हुआ—कहाँ जाय ? वह, क्या करे...क्या उसे अन्ततः घृणित जीवन ही व्यतीत करना पड़ेगा ?...भिक्षाटन का सहारा लेकर लोगों की झिड़कियाँ सहनी पड़ेगी—लांछन, अपमान, अनादर और गुण्डों के धक्के सहन करना ही होगा ?....यहीं सब सोचती हुई बिन्दु निर्जन रात्रि में अज्ञात दिशा की ओर चली जा रही थी। उसके हृदय में कोलाहल मचा हुआ था—कहाँ जाय ? क्या करे ?

पीछे कुछ खटका सुनकर उसने मुड़कर देखा तो सन्न रह गई। एक ओवरकोटधारी व्यक्ति उसके पीछे खड़ा था। उस व्यक्ति के चेहरे का सम्पूर्ण भाग ओवरकोट के उठे हुए लम्बे-लम्बे कालरों से पूर्णतया छिपा हुआ था, केवल दो प्रज्वलित आँखें विन्दु की आँखों से मिलकर उसे भयभीत कर रही थीं।

विन्दु को उस व्यक्ति की वेषभूषा कुछ-कुछ परिचित सी मालूम हुई और शीघ्र ही उसे ध्यान हो आया कि यही वह चोर है जो उस दिन अर्द्धरात्रि को ताऊ के कमरे में वसीयतनामा चुराने घुसा था। इस बात का स्मरण आते ही वह सिर से पैर तक काँप उठी। यह शैतान उसके पीछे क्यों पड़ा है ? क्या चाहता है यह ?

"तुम कौन हो ?..." विन्दु ने भयमिश्रित स्वर में पूछा।

"तुम्हारा हितैषी !..." वह व्यक्ति बोला—"तुम नहीं जानती कि इस प्रकार भाग कर तुम कितना अनर्थ कर रही हो—क्या नरकीय जीवन व्यतीत करना चाहती हो !... अगर से ऊब गई हो, तो कोई बात नहीं, मेरे साथ आओ—मैं तुम्हारी सहायता करूंगा...."

"तुम अपने रास्ते जाओ ! मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं..."

"जीवन नैया को नियमित रूप से चलाने के लिए नारी को एक जीवन-साथी जरूर चाहिए....यदि तुम सीधे मेरे साथ न चलोगी तो मुझे बल प्रयोग..."

"चट ! चट !..." विन्दु ने दो-तीन थप्पड़ उसके गालों पर जड़ दिये। उस व्यक्ति के कोट का कालर गिर पड़ा। विन्दु सिर से पैर तक काँप गई उस व्यक्ति को देखकर। वह दुष्ट तारक था।

यद्यपि विन्दु नारी थी तथापि आवेग में उसकी हथेली से लगा हुआ थप्पड़, तारक को तिलमिला देने के लिए काफी था। उसने कर्कश स्वर में कहा—"नादान लड़की। तुम्हारा यौवन कामी और आवारा कुत्तों की तृप्ति का साधन बन जायगा और यह छलकती जवानी कुछ ही दिनों में नष्ट हो जायगी। जिस मार्ग का अवलम्बन तू करने जा रही है उसमें स्त्रीत्व रक्षा की बात सोचना भी पागल-

पन है। तुम्हारे स्वीकारात्मक संकेतमात्र से मैं तुम पर सब कुछ निछावर करने को तैयार हूँ। मेरी दया और कृपा को अवहेलना कर संकट को आमन्त्रित करना बुद्धिमानी नहीं...."

"मैं तुझ जैसे नर-पिशाच से दया की भीख नहीं चाहती। दूर हो जा मेरे सामने से..."

"ऐसी बात है! इतना गर्व!..."तारक की भृकुटी तन गई और वह झपट पड़ा विन्दु पर और विन्दु भाग चली अमरावती नदी की ओर। नदी की कगार पचासों फीट ऊँची थी। कगार पर पहुँचकर विन्दु हतप्रभ सी हो गई। आगे जाने का कोई मार्ग नहीं था। पीछे से दुष्ट तारक दौड़ा आ रहा था। अब यदि विन्दु उसके हाथ पड़ी तो किसी प्रकार उसका स्त्रीत्व नहीं बचेगा।

विन्दु की दृष्टि अमरावती नदी की उछलती धाराओं पर पड़ी। किस प्रकार आनन्दविभोर हो क्षुद्र धारायें चट्टानों का आलिंगन करती हुई प्रवाहित हो रही हैं? थोड़ी देर के लिए विन्दु भूल सी गई अपने-आपको। वह उसी अवस्था में आगे बढ़ी और अनजाने ही पचासों फीट नीचे जा रही। नदी की उत्ताल तरंगों ने उसे अपने अंक में समेट लिया।

१४

सावन का आगमन हो चुका है। वनस्पतियाँ अपने योवन पर आ गई हैं। प्रशस्त व्योम मार्ग पर पागल मेघ इधर से उधर दौड़ लगा रहे हैं। पशु-पक्षी जीव-जन्तु सभी मदमस्त हो उठे हैं। सभी पर एक प्रकार का उन्माद सा छाया हुआ है। बाल्यावस्था की चंचलता त्यागकर युवावस्था की गम्भीरता में प्रवेश करने वाली बालिकाओं के कण्ठ स्वरों से कजली की मधुर स्वर रागिनी निकल रही है। सारा शहर आनन्दमय है।

उन दिनों डायमण्ड-टाकिज में कालिमा फिल्म कम्पनी की 'ब्रह्ममाया' फिल्म लगी थी शहर भर में उसकी चरचा थी। कुशल कलाकारों तथा श्रेष्ठ निर्देशकों द्वारा प्रस्तुत इस चित्र ने मिर्जापुर में एक हलचल सी मचा दी थी। इस अद्भुत चित्र ने ब्रह्म

और जीव के उस सुदूरतम सम्बन्ध को, जिसको सुलझाने के लिए योगी मुनी अपने शरीर को चिन्तन की आग में भस्म कर डालते हैं—हमारे एकदम निकट ला दिया था। उसमें दिखाया गया था कि ब्रह्म और जीव में लेशमात्र भी अन्तर नहीं, केवल थोड़े से भौतिक साधनों से ही जीव ब्रह्ममय हो सकता है।

सावन के मस्त महीने में शृंगार-रस को छोड़कर ब्रह्म के फेर में पड़ना, हमारे मनचले युवकों को पसन्द नहीं था—फिर भी उसके अपूर्व चित्रांकन, अद्भुत ध्वनि आलेखन मधुर गायन तथा भव्य शीलपीकरण (Grand settings) का विचार करके उन्होंने उसे देखा हो।

अधर, तारक तथा विमल आदि के कानों में भी इस चित्र की उत्कृष्टता की भनक पड़ी। ऐसे चित्र को भला वे लोग कब छोड़ सकते थे। कपड़े पहन, तीनों ने तांगे पर डायमण्ड टाकिज की ओर प्रस्थान किया।

भव्य-भवन के सामने पहुँचकर तीनों उतर पड़े। शहर के सबसे बड़े जमींदार एवं रईस को आया हुआ देखकर, सिनेमा के मैनेजर ने अधर का स्वागत किया और उन्हें ले जाकर स्पेशल क्लास में बैठा दिया।

जिस सीट पर अधर बैठा हुआ था, उसके बगल वाली सीट पर एक अल्प वयस्क सुन्दरी बैठी थी। यौवन इसके अंग-प्रत्यंग से झांक रहा था। इसका गोरा बदन, रक्तवर्ण अधर तथा उन्नत उरोज दर्शकों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त थे।

यद्यपि विन्दु की हृदयहीनता ने अधर के हृदय में स्त्री जाति के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी थी, फिर भी इस सुन्दरी की असीम सौन्दर्य देखकर, वह उसकी ओर देखे बिना न रह सका। आजकल अधर की तबीयत कुछ ठीक थी। उसकी मानसिक व्यथा बहुत कुछ कम हो चली थी। तारक की दी हुई उस अद्भुत दवा का यह असर था। अवसर पाते ही विमल की आँख बचाकर, तारक अब भी अधर को वही 'दवा' पिला दिया करता था।

अधर ने उसकी ओर देखा—जी भरकर देखा। उसी समय

उसे बिन्दु की याद आई। वह बिन्दु की सुन्दरता से इस नारी की सुन्दरता की तुलना करने लगा। उसे लगा, जैसे बिन्दु ही दूसरा चोला धारण कर आ गइ है! अधर उसकी ओर बड़ी देर तक अनिमेष दृष्टि से देखता रहा—फिर भी उसके तृषित नेत्र तृप्त, न हुए।

सहसा उसके नेत्र उसकी ओर घूम पड़े। अधर को इस प्रकार तन्मय दृष्टि से अपनी ओर देखता हुआ पाकर वह सहम गई। उसके कपोल लज्जा से आरक्त हो उठे, परन्तु दूसरे ही क्षण उसकी सारी लज्जा विलीन हो गई और उसके उज्जवल मुखमण्डल पर मन्द मुस्कान की स्पष्ट आभा झलकने लगी! उसने अधर से पूछा—"कहाँ रहते हैं, आप?"

"अर्जुनपुर!...और तुम?"

"पसरहट्टा में—वेश्या हूँ मैं!"

"वेश्या!..."एकाएक अधर का हृदय घृणा से भर उठा।

उस वेश्या से अधर का यह आन्तरिक भाव छिपा न रह सका वह समझ गई कि अधर के हृदय में उसके प्रति घृणा का बीज अंकुरित हो गया है। वह दृढ़ता के साथ बोली—"आप मुझे इतनी हेय दृष्टि से क्यों देख रहे हैं? इसलिए न कि मैं वेश्या हूँ? परन्तु इसका क्या प्रतिकार हो सकता है, आप ही बतायें? क्या समाज मुझे वधू के रूप में स्वीकार करेगा? मेरे विचार से तो वह एक वेश्या के लिए कभी भी इतना कष्ट न उठायेगा। तो फिर मेरे लिए वेश्या-वृत्ति के सिवा और कौन सा मार्ग है, बोलिये?...आप वेश्या-वृत्ति को हेय समझते है, परन्तु क्या कभी आपने इस प्रथा को समूल बिनाश करने के लिए उत्सुकता दिखलाई है?"

अधर नहीं जानता था कि एक वेश्या के हृदय में भी इतनी गम्भीर भावनायें हो सकती हैं। वह उसकी बातें सुनकर अवाक् रह गया। वस्तुतः उस वेश्या ने जितनी बातें कही थीं, उसका अंश-अंश वाक्य-वाक्य वास्तविकता का द्योतक था। कुछ रुककर वह पुनः बोली—"समाज हमें नीच कहता है, परन्तु हमारे सुधार के लिए वह कुछ भी कष्ट उठाना नहीं चाहता। हमारे इस घृणित जीवन के

लिए यह प्रबल पिशाचरूपी समाज ही उत्तरदायी है। समाज हमारी पूजा करना छोड़ दे तो हम सात्विक जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो जाऊँगी। लेकिन यह असम्भव है, महाशय! समाज के मोटे-मोटे कर्णधारों को बिना हमारे यहाँ आये एवं अपने अपवित्र हाथों द्वारा हम पर इत्र सुगन्ध चढ़ाये, चैन नहीं मिलता। तो फिर दोष किसका है—आपका—समाज का—या मेरा?"

"तुम बड़ी वाक्पटु हो...." अधर ने कहा—"मुझे स्वप्न में भी विश्वास न था कि एक वेश्या का हृदय भी इतना भावुक हो सकता है। वस्तुतः हमें, हमारे समाज को, तुम जैसी नारी की आवश्यकता है। मुझे यह देखकर अतीव प्रसन्नता हो रही है कि अब तुम्हारा दृष्टिकोण, सामाजिक माया बन्धन को सुलझाने की ओर जा रहा है, तभी तो तुम ब्रह्ममाया देखने आई हो।"

"वास्तव में ऐसी ही बात है और सच पूछिये तो मुझे अपना यह कुत्सित जीवन बहुत ही घृणास्पद प्रतीत होता है, परन्तु करूँ क्या? विवश हूँ..."

धीरे-धीरे अधर का मन उस वेश्या की ओर आकर्षित होने लगा। वह उसकी वाक्पटुता पर मुग्ध हो गया। उसकी बुद्धिसंगत बातों ने शीघ्र ही उसे अपना बना लिया। घंटी बज गई और दो एक ट्रेलर दिखाने के बाद खेल प्रारम्भ हो गया। मधुर संगीत से सारा हाल गूँज उठा। एक योगी था—एकदम बुड्ढा, आयुभार से दबा हुआ। गा रहा था वह—"छोड़ जगत की माया मुसाफिर......"

कर्णप्रिय संगीत सुनकर दर्शकगण मस्ती से झूमने लगे। सबके नेत्र रजतपट पर निश्चल थे। उनका मन अद्भुत योगी की मधुर स्वर-लहरी के साथ दौड़ रहा था। रह रहकर उसके मन में यही प्रश्न उठता था कि क्या वास्तव में जगत की माया छोड़ देनी चाहिए अधर, विमल, तारक तथा वह वेश्या—सभी इस समय आनन्दविभोर हो रहे थे। हॉल में घोर अन्धकार था। योगी का गाना समाप्त होते ही अधर के कन्धे पर किसी के कोमल हाथ जा पड़े। अधर ने अनुमान लगाया—यह उसी का हाथ हो सकता है।

इण्टरवल हुआ। दर्शकगण हड़बड़ाकर उठे और बाहर जाने के लिए जल्दी करने लगे। अधर भी बाहर जाने के लिए उठा तो तारक विमल से बोला—"चलोगे तुम भी बाहर ?"

"मेरी इच्छा नहीं, तुम जाओ !...." विमल अन्यमनस्क भाव से बोला। तारक ने भी, न जाने क्यों बाहर जाना पसन्द नहीं किया।

डायमण्ड टाकिज का भव्य भवन एक सुविशाल उद्यान के मध्य में बना हुआ था, जिसमें अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे पौधे अपने मधुर सुगन्धयुक्त पुष्पों द्वारा वायु को उन्मादकारी-सुरभि प्रदान कर रहे थे !

अधर, हॉल से निकलकर, इसी उद्यान के एक फौव्वारे के पास आ बैठा। सहसा उसके कन्धे पर किसी के कोमल हाथ का स्पर्श हुआ। उसने पीछे मुड़कर देखा—सिनेमा हाल वाली वही सुन्दरी वेश्या उसके पीछे खड़ी है, मुस्कुराती हुई।

"तुम भी आ गई ?..." पूछा अधर ने।

"जी हाँ !..." आकर्षक स्वर में उत्तर मिला।

"ब्रह्ममाया पसन्द आई तुम्हें ?"

"ना..."

"क्यों ?..." अधर को कुछ आश्चर्य हुआ।

"जिस पवित्र प्रेम की आशा लेकर आई थी, वह इसमें नहीं मिली..."

"तो तुम प्रेम की प्यासी हो—प्रेम चाहती हो ?"

"हाँ !..." उसने एक तीक्ष्ण कटाक्ष किया।

अधर युवक था, सुन्दर था, परन्तु प्रेम के नाम पर अभागा था। उसकी लालसा अभी तक अतृप्त थी, विंदु ने उसे निराश कर दिया था। परन्तु वह निराशा उसके तीक्ष्ण कटाक्ष से छिन्न-भिन्न हो गई। वह अपने आपको बश में न रख सका। आगे बढ़ा, वेश्या कुछ संकुचित हुई, परन्तु अधर ने प्रेमावेश में उसके अधरों पर एक निशानी अंकित कर दी।

चन्द्रमा खिलखिला उठा, दिशाएं हंस पड़ी, प्रकृति अट्टहास कर

उठी। परन्तु दूसरे ही क्षण अधर का मुंह लज्जा से आरक्त हो गया। वह नहीं समझ सका कि उसके इस आकस्मिक परिवर्तन का कारण क्या है? उसने अपना हृदय टटोला—तो उसे लगा, जैसे अब वह उस वेश्या को कभी न भूल सकेगा।

"तुम्हारा नाम ?...." अधर ने पूछा।

"हिना !"

"यह नाम जो मैंने कहीं सुना है...." अधर आश्चर्ययुक्त स्वर में बोला—"कदाचित् तारक ने ही तुम्हारे विषय में मुझसे कहा था–तुम्हारी प्रशंसा कर रहा था वह, परन्तु आश्चर्य है कि आज वह तुमसे बोला तक नहीं...."

'शिष्टाचार भी तो कोई चीज है महाशय! उसे उल्लंघन करने का साहस तारक बाबू कैसे कर सकते थे!" हिना ने कहा।

"तुम ठीक कहती हो, तारक बहुत समझदार है..." अधर बोला।

"कभी-कभी मेरे यहाँ आया-जाया करिये! दूसरों की तरह मुझे न समझ लीजियेगा। वेश्या होते हुए भी, मैंने ढेर के ढेर रुपयों पर लात मार दी है, देने वालों के मुंह पर थूक दिया है और अपने स्त्रीत्व की रक्षा की है—इस आशा से कि सम्भावतः मुझसे कोई विवाह कर ले..."

"विवाह होगा और अवश्य होगा।" कहकर उसने घड़ी देखी। देखकर बोला—"बहुत देर तक हम बात करते रह गये। हमें अब हॉल के भीतर चलना चाहिए।"

"चलिए...." एकाएक हिना का मन उदास हो गया।

दोनों सिनेमा हॉल में आये तो खेल लगभग समाप्ति पर था। उनके आते ही तारक ने पूछा—"कहाँ थे इतनी देर तक ?"

"यों ही जरा टहल रहा था..." तारक ने अन्वेषक दृष्टि हिना पर डाली। हिना उसकी ओर देखकर मुस्कुरा पड़ी।

खेल समाप्त हुआ। अधर, विमल तथा तारक सिनेमा हाल से बाहर निकले और पैदल ही टहलते हुए अपने गाँव की ओर चल पड़े। उनका गाँव यहाँ से तीन मील की दूरी पर था। क्षण-प्रति

क्षण उठते हुए विचारों से युद्ध करता हुआ अधर चुपचाप चला जा रहा था।

"क्या सोच रहे हो ?..." विमल ने सहसा उसकी विचार-धारा में व्यवधान डाल दिया।

"कुछ नहीं !..." अधर बोला।

"क्या उस वेश्या की बात सोच रहे थे !..." स्मित करता हुआ विमल बोला—"मालूम होता है कि तुम पर उस वेश्या का जादू चल गया है। देखो, वेश्याओं के फेर में न पड़ना, नहीं तो नष्ट हो जाओगे।"

यह बात सुनते ही तारक की भृकुटि तनगई —"तुम कौन होते हो अधर भाई को शिक्षा देनेवाले जी ? अधर भाई स्वयं अपना भला-बुरा समझ सकते हैं...." उसने सरोष कहा !

"विमल !..." अधर बोला—"तुम अभी उसको समझ नहीं पाये हो। वह देवी है, देवी ! उसका हृदय, वेश्या का हृदय नहीं है।

"ठीक कहते हो अधर भाई, तुम !"

"देखो, शहर का कौन रईस है, जो उसपर जान देने को तैयार न हो, मगर वह किसी की ओर आँख उठाकर देखती भी नहीं। वह कहती है, मैं अपना शरीर उसी को सौंप सकती हूँ, जो मुझसे विवाह करने को प्रस्तुत होगा।"

"सुनो विमल !..." अधर बोला—"कितना विशाल हृदय है...कितनी उच्च भावनायें हैं उसकी !"

"अच्छा यह तो बताओ अधर भाई ! कि खेल कैसा था ?...."
विमल ने पूछा।

"मैं तो पूरा देख ही नहीं सका, विमल ! तुम बताओ तो ?..."

विमल कहने लगा—"खेल तो बहुत ही चित्ताकर्षक था। 'छोड़ जगत की माया' वाला गाना तो मुझे जन्म-पर्यन्त नहीं भूलने का...."

"अच्छा ! जरा तुम भी वैसा ही गाओ। गाने का शौक तो तुम्हें बहुत है..." अधर ने विमल से कहा।

"छोड़ जगत की माया मुसाफिर...." विमल ने शुरू किया।

"ओह, नहीं बन रहा है तुमसे..." अधर ने उसे रोकते हुए कहा—"सुनो ! मैं वैसी ही ट्यून में गाता हूँ।"

अधर अलाप लेकर गाना आरम्भ किया—"छोड़ जगत की माया...भाई-बन्धु और कुटुम्ब कबीला...सपने की-सी माया मुसाफिर...."

सचमुच अधर ठीक उसी प्रकार गा रहा था, जिस प्रकार रजतपट का वह योगी ! विमल और तारक के मुँह से "वाह-वाह" की आवाज बरबस निकल पड़ी। अधर गाता जा रहा था। वह भूल गया था इस जगत को और उसकी विचित्र माया थी ! उसकी स्वर-लहरी वातावरण में गूँज रही थी—"छोड़ जगत की माया..."

* * * *

हिना के सुसज्जित प्रकोष्ठ में तारक बैठा है। हिना एक शीशे के सामने खड़ी, अपना बाल सँवार रही है।

बाल सँवार कर उसने क्लिप लगाया, गालों पर पफ फेरा, होंठ लिपस्टिक से लाल किये, फिर तारक के पास बैठती हुई बोली—"तुम्हारे ही कहने से तो यह सब किया, तारक बाबू ! मैंने अधर को पूर्णतया वश में कर लिया है...."

तारक बोला—"तभी तो मुझसे तुम्हारी प्रशंसा करते वह अघाता न था, लेकिन यह शैतान विमल मेरे रास्ते का काँटा है। यह अधर का साथ एक मिनट के लिए भी नहीं छोड़ता। खैर देख लूँगा उसे। अब अधर तुम्हारे यहाँ प्रतिदिन आया करेगा। देखना उसपर अपना जाल इस तरह फैलाना कि वह तुमसे शादी कर ले। फिर तो उसका अपार धन सरलतापूर्वक हमारे हाथ आ जायगा। तुम उसकी पत्नी बनकर उसके साथ रहना और अवसर पाते ही...डरो नहीं, तुम्हारा हिस्सा सुरक्षित रहेगा।"

हिना के अन्तराल में भयंकर घृणा की लहर उठी, परन्तु उस घृणा की लहर को उसने बाहर निकलने नहीं दिया। मुस्कुराकर बोली—"मुझे धन की कामना नहीं—कामना है केवल सम्मानसहित जीवन व्यतीत करने की..."

"उससे शादी करते ही तुम्हारी यह कामना बर आयेगी। तुम रानी बनकर सुखमय जीवन व्यतीत करना...मैं पूर्ववत तुम्हारा दासानुदास बना रहूँगा...." तारक बोला।

हिना उसकी मूर्खता पर मन ही मन हँसती हुई बोली—"मैं वेश्या हूँ तो क्या, मेरा हृदय इतना घृणित नहीं, कि धन के लिए आत्मसम्मान को ठुकरा दूँ.....मैं तुम्हारे कुचक्रों से जरा भी सहमत नहीं, फिर भी तुम्हारा साथ देना क्यों चाहती हूँ वह स्वयं मुझे नहीं मालूम। मैं तुमसे प्रेम भी नहीं करती। न जाने किस दैवी प्रेरणा से तुम्हारा साथ देने को प्रस्तुत हो गई हूँ, फिर भी यह बात ध्यान में रखो कि भविष्य में प्रलोभन के नाम पर तुम मुझसे कुछ न करा सकोगे।"

* * *

परिवर्तन ही तो जगत की माया है। अधर के जीवन में भी एक महान परिवर्तन हुआ। जो अधर वेश्याओं के नाम तक से चिढ़ता था, वही अब हिना के सौन्दर्य पर शलभ की भाँति मँडराने लगा। जमींदारी का उत्तरदायित्व छोड़कर उसके कोठे पर बैठा हुआ प्याले पर प्याला ढाला करता था।

अधर के इस महान परिवर्तन को विमल ने भी लक्ष किया था, परन्तु वह विवश था? उसके लाख समझाने-बुझाने पर भी, वह कोई बात नहीं सुनता था। उसका हृदय अधर का विनाश होते हुए देखकर हाहाकार कर रहा था। कभी-कभी अधर को समझाते हुए उसे झिड़कियाँ भी सहनी पड़ती थी। एक दिन तो अधर ने कठोर स्वर में उससे कहा था—"तुम अपने आप को भूले जा रहे हो, विमल! ऐसा न हो कि मुझे तुम्हें बताना पड़े कि तुम कौन हो..."

आवेश में और न जाने क्या-क्या बक गया था वह। विमल के हृदय को इस अपमानजनक व्यवहार से मर्मान्तक व्यथा पहुँची थी। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आये थे। बेचारा विमल ...!

जब अधर हिना के यहाँ जाता तो वह उससे अपने साथ विवाह कर लेने का अनुरोध करता! पहले तो अधर समाज के भय से उसे

बातों ही बातों में टालता रहा, परन्तु क्रमशः उसकी भी इच्छा बलवती होती गई।

एक दिन हिना कृतिम आँसू ला कर अधर से बोली—"तुम भी बाबू बात बनाने वाले ही निकले। मेरे तन को सभी चाहते हैं, मगर मन को कोई नहीं चाहता।"

"मैं चाहता हूँ तुम्हारे मन को हिना!..." अधर ने कहा—"तुम्हारे हृदय की महत्वाकांक्षा मैं पूर्ण करूंगा....तुम्हें अवश्य ही अपनी बनाऊंगा। समाज हँसे, गाँव वाले अपमानित करें, मैं सब सहन करूंगा!... किसी की भी परवाह नहीं करूंगा!"

धीरे-धीरे गाँव भर में यह समाचार फैल गया कि छोटे सरकार एक वेश्या से विवाह करने जा रहे हैं। सभी उसे धिक्कारने लगे। शहर के लोग इस बात पर भले ही ध्यान न दें, मगर देहात में तो यह अघटित घटना थी। कोई कहता—"ताऊ के साथ ही धर्म भी चला गया!" कोई "कहता अंग्रेजी पढ़ने का प्रभाव है यह!" आदि आदि...

विमल ने इस विवाह को रोकने का बहुत प्रयत्न किया, मगर असफल ही रहा! कुछ वश न चला उसका। नारायाण काका से जब यह समाचार सुना तो खाना-पीना छोड़कर, नंगे पाँव खुले बदन दौड़े आये। बोले—"तू छोकरा पागल हो गया है क्या? चुटकी भर दिमाग में इतना बड़ा फितूर कैसे समा गया?"

"क्या है काका?..." अधर बोला—"है क्या?"

"है तेरा सर! वेश्या से कोई विवाह करता है कहीं? ताऊ की सारी प्रतिष्ठा धूल मे मिलाना चाहता है? यह विलायत नहीं, यह चीन नहीं, यह जापान नहीं—यह है आर्यावर्त भारत भूमि! वेश्या से विवाह करके सात पीढ़ी को नरक भेजने की इच्छा है तेरी?"

"क्या वेश्या से विवाह करना पाप है काका?"

"शराब...." काका अधर की बातें पूरी तरह से न सुन सके—"क्या तू शराब भी पीने लगा? शिव-शिव! जा कुलांगार! आज से तेरी ड्योढ़ी मेरे लिए नरक हो गई। अखबार पढ़ने को न मिलेगा,

न सही..." काका रूठकर चले गये ।

मगर अधर ने कालचक्र के प्रभाव से या देवी-प्रेरणा से, किसी के रूठने का ख्याल न किया और एक दिन आर्य-पद्धति में हिना की शुद्धि करा, उससे विवाह कर ही लिया !

गुड़िया-सी सजी हिना उसके घर आई । शहर भर में इस विवाह की चर्चा रही ! वेश्या-जगत ने आश्चर्य और विस्फारित दृष्टि से यह अद्भुत विवाह देखा ।

मगर अधर के घर आते ही, हिना में आकस्मिक परिवर्तन हो गया । वह अधर का स्वर्गीय प्यार पाकर निहाल हो गई । आदर्श गृहणि की भाँति गृह-कार्य सम्हालने लगी ।

अत्याचार की मूर्ति तारक, हिना का यह आकस्मिक परिवर्तन लक्ष्य कर रहा था । वह चाहता है कि हिना किसी प्रकार अधर की जान ले ले, ताकि वह सारी सम्पत्ति का अधीश्वर बन जाय, परन्तु उसकी यह आकांक्षा पूर्ण होती नहीं दीख रही थी । वह यह भी चाहता था कि हिना कुछ मूल्यवान वस्तुएँ धीरे-धीरे उसके हवाले करती रहे, परन्तु क्यों वह अपने पति का घर उजाड़ती ?...जिसने उसके लिए सारे समाज की अवहेलना सहन की, गाँव वालों के तिरस्कार-पूर्ण व्यंग सहे, उसके साथ वह कैसे छल कर सकती है ?

तारक दाँत पीस कर रह जाता । उसका एक भी दाँव ठीक नहीं पड़ रहा था !

अधर विन्दु की सुध भूल, हिना में डूब गया । यह है नियति का कालचक्र !

१५

"मैं समझ नहीं पाता कि तुम लोगों ने यह सब षड़यन्त्र क्यों रच रक्खा है । अधर को बरबाद कर देने से यदि तारक सब कुछ पा जायगा तो तुम्हें क्या मिलेगा ? क्या तुम समझती हो कि वह तुम्हें धन सम्पत्ति से लाद देगा ? नहीं कभी नहीं, काम निकल जाने पर वह तुम्हें दूध की मक्खी की तरह निकाल बाहर करेगा !..." विमल आज एकान्त पाकर हिना से कहा ।

"तुम समझ नहीं पाये हो, विमल बाबू..." हिना रुँधे स्वर से बोली।

"खूब समझा है मैंने ? तुमने और तारक ने मिलकर जिस भीषण षडयन्त्र का सृजन किया है, वह मैं बहुत पहले से जानता हूँ। अधर की तरह मैं अन्धा नहीं। तारक दुष्ट है....तुम भी एक..."

"विमल बाबू !..." अन्तिम शब्द निकलने के पूर्व ही हिना उत्तेजित-सी हो उठी।

"सत्य कठोर होता है, मगर याद रखो, तुम अधर से नहीं, स्वयं अपने से छल कर रही हो..."

"शान्त हृदय से तुमने कभी इस बात पर विचार नहीं किया है, विमल बाबू ! और न तो मुझे ही पूर्णतया समझने का प्रयत्न किया है। जिस दिन मुझे पूरी तरह समझ जाओगे, उस दिन तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुम्हारा विचार कितना असत्य है। मैं वेश्या थी—मगर वह वेश्या नहीं, जो चाँदी के चन्द टुकड़ों पर अपना स्त्रीत्व बेच देती हैं—वह वेश्या नहीं, जो रात-दिन वासना में लिप्त रहती हैं....वह वेश्या नहीं, जो नरक के कीड़ों का सम्पर्क पसन्द करती है..." कुछ क्षण के लिये वह रुकी, फिर कहने लगी—"मैं आत्म-प्रशंसा नहीं करती बाबू ! मुझे समझने का प्रयत्न करो...इधर देखो, मेरी इन आंखों में..."

विमल ने आश्चर्यपूर्ण दृष्टि हिना के नेत्रों पर डाली। यह क्या—आंसू।

हिना कहती गई—"देखो ! तुम्हारे व्यंगवाणों ने मुझे कितनी वेदना पहुँचायी है ?....ये अश्रु कण मेरे हृदय में छिपी हुई मर्मान्तिक वेदना और असीम कष्ट के प्रतीक हैं—कुछ देखा मेरी आँखों में ? इनमें छल-कपट की छाया देखी तुमने....?"

विमल ठण्ढी सांस लेकर बोला—"कीचड़ से कमल उत्पन्न होता है—बादलों के मध्य से ही धवल चन्द्र देदीप्यमान होता है...राक्षसत्व ही मानवता की जननी है। तुम्हारी ओर से मेरा हृदय साफ हो गया, हिना ! अब तारक को देखना है..."

"वे अच्छे आदमी नहीं हैं। उनके विरुद्ध कोई कदम उठाने के

पूर्व खूब समझ बूझ लेना...सावधान ! कोई आ रहा है, तुम जाओ...." विमल चला गया ।

दूसरे द्वार से तारक ने अन्दर प्रवेश किया और बोला—"किस प्रलय की रूप रेखा तैयार की जा रही थी, रानी जी ?"

"कहाँ थे इतनी देर तक ?"

"वाह ! बात का रूख बदल देने में तुम माहिर जरूर हो, परन्तु मुझे धरका न दे सकोगी..." एकाएक तारक का स्वर कठोर हो गया—"तुमने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया । मैंने समझा था कि विवाह हो जाने पर सरलतापूर्वक मेरा काम तुम कर दोगी, परन्तु देखता हूँ, तुम मेरे हृदय पर आघात करने पर उद्यत हो गई हो । इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा । यह न भूलो, तारक किसी के जान की परवाह नहीं करता..."

"तुम्हें हो क्या गया है ?"

"मेरे मन में जो ज्वाला भभक रही है, वह तुम्हारी जान लेकर रहेगी, साथ ही अधर की भी ..समझी !" कहकर तारक तेजी के साथ कमरे के बाहर निकल गया ।

* * * *

अर्द्ध रात्रि का समय !

अधर और हिना अपने-अपने कमरे में प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे हैं । अधर के कमरे के सामने सहसा क्षणभर के लिए आलोक की एक तीव्र रेखा चमक उठी, मानों किसी ने टार्च जलाई हो । पलक मात्र के लिए उस आलोक ने, द्वार के सामने खड़े व्यक्ति की आकृति स्पष्ट कर दी ।

चोर की तरह वह दबे पाँव आगे बढ़ रहा था । एक लम्बा काला ओवरकोट उसके शरीर को ढंके हुए था । हाथ में रिवाल्वर था, जो आग उगलने के लिए तैयार था ।

एक क्षण तक वह व्यक्ति अधर के द्वार के सामने खड़ा होकर आहट लेता रहा । फिर दबे पाँव आगे बढ़ा, हिना के कमरे की ओर ।

टिमटिमाता हुआ लैम्प, कमरे में क्षीण प्रकाश फैल रहा था ।

हिना निश्चिन्त सो रही थी। आने वाली विपत्ति का उसे कुछ भी आभास नहीं था।

उस व्यक्ति ने अपना रिवाल्वर वाला हाथ ऊँचा किया और 'धाँय' की आवाज के साथ एक चीख चारों ओर गूँज उठी।

अधर का कमरा दो कमरों के बाद पड़ता था। उसने चीख की आवाज सुनी तो वह चौंक कर उठ बैठा। वह दौड़ पड़ा हिना के कमरे की ओर। जाकर देखा, विमल को पकड़े हुए तारक और रामू खड़े हैं। विमल के सामने ही जमीन पर रिवाल्वर पड़ा था। अधर मानो सब कुछ समझ गया! पूछा उसने—

"क्यों, क्या बात है?"

"मनुष्य के वेश में शैतान है यह, अधर भाई..." तारक ने विमल के मुँह पर कई तमाचे जड़ते हुए कहा—"इसने हिना की हत्या कर दी है..."

"हिना की हत्या?" अधर के मुख से एक दीर्घ आह निकलकर वातावरण में विलीन हो गई।

"आधी रात को रिवाल्वर की आवाज सुनकर मैं इधर दौड़ा। यहाँ आकर देखा तो विमल खड़ा है और हिना का रक्ताक्त शरीर पलंग पर छटपटा रहा है—इसी समय रामू भी आ पहुँचा। उसने इसे कसकर पकड़ लिया। रामू से पूछ लो, अधर भाई!...." तारक ने कहा।

"सत्य कह रहे हैं तारक बाबू छोटे सरकार!" रामू बोला।

अधर क्रुद्ध साँप की भाँति विमल के सामने आ खड़ा हुआ। उसने अपनी प्रज्वलित आँखें विमल की आँखों में गड़ा दी। विमल के नेत्र उस समय अश्रुपूर्ण थे। अधर हुँकार उठा..."रोता है? मुझे बरबाद कर, मेरी दुनिया उजाड़ कर, अब फांसी के नाम पर रोता है? बता रे नरपिशाच! इस कोमल कली ने तेरा क्या बिगाड़ा था, तू क्यों इसके रक्त का प्यासा हो गया?... तू भिखारी था, मैंने तुझे आश्रय दिया, अपना बनाकर तेरा सम्मान बढ़ाया और उसका पुरस्कार मुझे इस रूप में देकर, उऋण होने का अच्छा रास्ता पसन्द किया तूने। बोल शैतान के बच्चे! आस्तीन के साँप!..." अधर

ने भी चट्ट-चट्ट विमल के गाल पर कई तमाचे जड़ दिए।

विमल चुप रहा। कुछ न बोला वह। उसकी सजल आँखें सामने पड़े हुए हिना के शव पर स्थिर थी...यही है जगत की माया! कितना देदीप्यमान था उसका सौन्दर्य!...मगर अब मिट्टी की काया मात्र रह गई हैं। ये लम्पट दुनियाँ वाले जीवितावस्था में 'तेरा-मेरा' के पीछे भागते हुए क्या-क्या अपराध नहीं करते! इतने कामुक हैं इस जगत के क्षुद्र जीव, जो मिट्टी की काया पर मरते हैं, नहीं समझते कि मिट्टी में मिल जायगी एक दिन यह सुन्दर काया

"आज समझा कि बार-बार हिना से दूर रहने का उपदेश तू क्यों दिया करता था?...आह मैं अन्धा था। नहीं जानता था कि अमृत पिलाने से सर्प विष ही उगलता है...मैं नहीं जानता था कि दूध से सींचने पर भी बबूल में काँटे ही होंगे....तुमने यह क्या किया, हिना से तेरा क्या बैर था?....बोल, बोल!...."

अधर लड़खड़ाने लगा, परन्तु तारक ने उसे सम्हाल लिया। उसकी अवस्था पुनः बिगड़ गई। वह बड़बड़ाने लगा—"पुलिस में दे दो इसे। बुलाओ पुलिस को पुलिस! पुलिस! पुलिस!"

रामू थाने की ओर दौड़ चला।

अधर की चीख-चिल्लाहट बढ़ गई। अन्तर से प्रसन्न और बाहर से भारी दुःख प्रकट करता हुआ तारक बोला...."शान्त रखो अपने को अधर भाई! तुम्हारी बिमारी खतरनाक है, आवेश में आवोगे तो तुम पूर्णतया पागल हो जाओगे..."

"पागल! पागल हो जाता तो अच्छा होता, तारक! मगर यह अर्द्ध उन्माद की अवस्था बड़ी भयानक है। रक्त-मांस का शोषण कर लेती है यह..."

कहकर वह पुनः लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा। हिना के ओर उसने दयनीय दृष्टि से देखा। देखकर उसकी आँखें ज्वाला उगलने लगी। दाँत पीसता हुआ वह बोला—"इधर लाओ उस विश्वास-घाती को—अपने हाथों उसका गला घोट दूँगा...."

"शान्त! शान्त रहो अधर भाई!" तारक बोला, परन्तु उसका

अन्तरमन हर्ष-विभोर हो रहा था।

"सुख-शान्ति तो विन्दु के साथ ही चली गई, तारक !..." एकाएक अधर के मुँह से विन्दु का नाम निकल पड़ा। उसकी याद आ जाने से वह और भी उद्विग्न हो उठा—"यदि आज वह होती मेरे पास, तो इस तरह से निस्सहाय रोता-सिसकता देख !...दौड़ कर मुझे आलिंगन पास में बाँध लेती और मुझे शान्ति प्रदान कर चिन्तामुक्त कर देती..."

अभी वह न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता रहता, यदि उसी समय पुलिस न आ गई होती।

विमल बन्दी बना लिया गया। वह एक शब्द भी न बोला, मानों इस विचित्र घटना-क्रमों को देखकर वह अवाक हो गया हो। उसके हाथों में लोहश्रृंखला डाल दी गई !

जाते २ उसने एक बार अधर के श्रीहीन मुख की ओर, फिर कुचक्री तारक की ओर ततपश्चात् मृत हिना के शव की ओर देखा। कुछ क्षण तक उसके नेत्र बन्द रहे फिर खुले—खुले तो वह खिलखिला कर हँस पड़ा...ठीक पागलों जैसी हँसी !

पुलिस उसे लेकर घर से बाहर हो गई।

१७

"मैं कहता हूँ कल्लन पुरुष नहीं, स्त्री है..." सुक्खन गरज पड़ा—"तुम सबको, सारे समूह को, सरदार धोखा दे रहे हैं—ऐसा धोखा जो आज तक हम माँझियों के दल में कभी घटित नहीं हुआ !"

"मगर किस साहस पर तुम ऐसा कह रहे हो ?..." सामने बैठे हुए माँझियों के दल में से खड़े होकर एक वृद्ध माँझो ने सुक्खन से पूछा।

आज प्रातःकाल ही से सरदार कल्लन को साथ लेकर न जाने कहाँ गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिती में सुक्खन ने—सरदार के

प्रतिद्वन्दी ने, एक पंचायत का आयोजन किया था और सरदार की पोल खोल रहा था।

"अपने साहस पर मैं ऐसा कह रहा हूँ। मेरे पास प्रमाण नहीं, परन्तु सारे दल की तरह मैं अन्धा नहीं हूँ, कि कल्लन को पुरुष समझ लूं। पुरुष के कपड़े पहनने से, स्त्री पुरुष नहीं बन सकती। कल्लन स्त्री है—एकदम स्त्री !..." सुक्खन दृढ़ स्वर में बोला।

"कैसे मान लें हम लोग ?" उस वृद्ध माँझी ने फिर संयत स्वर में कहा।

"तुम अन्धे हो...." सुक्खन क्रोध से गरज पड़ा—"कल्लन के वक्षस्थल पर ध्यान से देखो—उभरते हुए पुष्ट वक्षस्थलों की आभा तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़ेगी। उसके स्वर पर ध्यान दो—कितनी पतली सुरीली आवाज है उसकी। सरदार उसे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं रखते क्यों ? पुरुष का पुरुष के प्रति इतना आकर्षण देखा है कहीं ?...मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हुँ कि कल्लन स्त्री है—सरदार का विरोध करूगा। ऐसा अपवित्र मनुष्य हमारे दल का सरदार नहीं रह सकता।"

"किसका साहस है सरदार से उत्तर माँगने का ?"

"मेरा....मैं सरदार से अनुरोध करूँगा कि वे कल्लन के सर की पगड़ी उतार कर दिखलायें।"

"चुप रह ! वह देख सरदार आ रहे हैं !..." उस वृद्ध ने कहा।

टिड्डो की भाँति सब माँझी वहाँ से मर्र हो गये। केवल दो चार रह गये। सरदार कल्लन के साथ आकर खड़ा हो गया। बोला—"किस षड़यन्त्र की रचना हो रही थी यहाँ।"

किसी को भी साहस नहीं हुआ कि वह आगे बढ़कर बताये कि यहाँ क्या हो रहा था। सभी चुपचाप खड़े थे। सुक्खन न जाने क्या सोचता हुआ अपने झोपड़े की ओर चला गया ! सरदार इस बार कड़क कर पूछा—"क्या हो रहा था, साफ-साफ बोलो ?"

"सरदार !...." बोला वह वृद्ध—"सुक्खन एक कहानी कह रहा था और हम सब सुन रहे थे..."

"कैसी कहानी थी वह ?...." पूछा सरदार ने ।

"कबीले के एक सरदार ने अपने कबीले वालों से छिपाकर एक औरत को पुरुष वेश में अपने पास रखा था, उसी की कहानी थी !...." कहते-कहते यह वृद्ध थोड़ी देर के लिए रुका । उसकी आँखें सरदार की मुखाकृति पर क्षण प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले भावों को ध्यानपूर्वक देख रही थी—"तुम तो यह कहानी जानते होगे, सरदार ? सुक्खन कहता था कि उसने तुम्हीं से यह कहानी सुनी है "

सरदार चौंक पड़ा—उसका हृदय धक् से हो उठा । वृद्ध ने सरदार का चौंकना देखा—साथ ही देखा कल्लन की ओर, जिसके वक्षस्थल पर दोनों ओर मामूली उभार-सा दिखाई दे रहा था । वृद्ध ने अपने साथियों के ओर कुछ संकेत किया । साथियों के अधरों पर मन्द मुस्कान थिरक रही थी ।

सरदार कल्लन के साथ अपने झोपड़े में आया और धम्म से टूटी खाट पर बैठ गया । इस समय इसका हृदय तीव्र गति से स्पन्दित हो रहा था—"उफ ! आखिर सुक्खन उसका भेद जान ही गया । अब मान कैसे रहेगा ? क्या सुक्खन ने सारे दल से यह बात कह दी है ? मगर उसके पास प्रमाण क्या है ? क्या वह दृढ़तापूर्वक इस बात की पुष्टि कर सकता है ?....लेकिन उस समय जब दल वाले कल्लन को वक्षस्थल खोलने को कहेंगे ...सर की पगड़ी उतारने के लिए विवश करेंगे...तब !...."

एक क्षण के लिए सरदार के मन में आया कि सब आपत्तितों की जड़, इस कल्लन को कहीं ले जाकर छोड़ आये । पर तुरन्त ही उसका हृदय विद्रोह कर उठा । कैसे वह उसे निस्सहाय छोड़ सकता हैं ? कैसे वह इतना निर्दयतापूर्ण कार्य कर सकता है ?

सरदार ने अपना हृदय टटोला तो वह काँप उठा । उसे आज

ज्ञात हुआ कि अब कल्लन से अलग होकर वह नहीं रह सकता। कल्लन को भूल भी नहीं सकता—परन्तु क्यों ?... इसका कारण स्वयं उसको भी ज्ञात न था। फिर भी उसने आश्चर्य के साथ अनुभव किया कि कल्लन को अलग करने की बात हृदय में उठते ही एक मीठी-सी वेदना होने लगती है।

"कैसी तबियत है, सरदार ?..." कल्लन ने पूछा। उसके स्वर में करुणा ओत-प्रोत थी।

कल्लन अच्छी तरह समझ रहा था कि उसी के कारण सरदार विचलित हैं। सरदार की अवस्था देखकर उसे अपार कष्ट हो रहा था, मगर वह विवश था!

उसकी स्मरण-शक्ति अब तक न लौटी थी, फिर सरदार को छोड़कर वह कहाँ शरण पा सकता था। उसके हृदय में बार-बार यही प्रश्न उठकर उसे बेचैन कर उठता कि उसका कहाँ घर है ? कौन सगे सम्बन्धी हैं—मगर वे कहाँ हैं ? उसके लिए यह जान लेना जटिल कार्य था। वह दिन-रात चिन्तानल में दग्ध होता रहता था। आज भी अपने ही कारण सरदार की दीनावस्था देखकर उसके नेत्रों से अश्रु जल छलछला आये।

सरदार ने उसे खींचकर अपने पास बैठा लिया और उसके आँसूओं को पोंछता हुआ बोला—"रोता क्यों है ? तुझे अपने से अलग नहीं कर सकता मैं !... दल की सरदारी अब मैं नहीं चाहता-चाहता हूँ केवल तुझे ..."

* * * *

गाँव के छोर पर बने हुए अपने छोटे से झोपड़े के दरवाजे पर बैठा हुआ हरिया हुक्का पी रहा था। कई महीनों से उसका स्वास्थ्य ठीक न था। यही कारण था कि उसकी बहन सुखिया ही अकेले कपड़ा धोने जाती थी! आज प्रातःकाल से ही उसे खाँसी बहुत आ रही थी, ज्वर भी जोरों पर था।

"सुखिया !....ओ सुखिया ! ..." पुकारा हरिया ने, खों-खों

खाँसते हुए ।

"आई भैया !..." भीतर से सुखिया की आवाज आई और वह धीरे से आकर हरिया के सामने खड़ी हो गई । हरिया की क्लान्त आँखें सुखिया के मुँह पर जा पड़ी । नित्य की भाँति आज भी सुखिया का मुँह सूखा, पीला एवं श्रीहीन था । आज महीनों से हरिया आश्चर्य पूर्व दृष्टि से सुखिया में होते हुए परिवर्तन को देखता आ रहा था । वह सोचता—क्या हो गया है सुखिया को ? क्यों इसका मुँह उतरा हुआ-सा रहता है ? क्यों यह इतनी अनमनी-सी रहती है ? क्यों मुझसे दूर-दूर रहने की चेष्टा करती है ?

"एक लोटा पानी दे जा तो—दाँतून कर लूँ !...."हरिया ने कहा ।

सुखिया झोपड़े में जाकर एक लोटा पानी ले आई । हरिया पानी मुँह में लेकर गुलगुली करता हुआ बोला—"तुझे आजकल क्या हो गया है, सुखिया ? क्या कष्ट हैं तुझे ?"

सुखिया थर-थर काँपने लगी—उसके पैर जैसे शक्तिहीन हो गये । वह मुँह छिपाकर जाने लगी । उसका भाव हरिया से छिपा न रहा । कितनी ही बार उसने उसकी बीमारी का कारण पूछा है, मगर वह साफ-साफ क्यों नहीं बताती ! क्या भेद है इसमें ?

हरिया डपटकर बोला—"खड़ी रह ? कहाँ जाती है !"

"जाऊँ माई के साथ वर्तन माज लूँ !..." सुखिया बोली और जाने को उद्यत हुई !

"तू ठीक-ठीक बताती क्यों नही ? तुझे क्या दुःख है—तू दिन-दिन पीली क्यों होती जा रही है ? बोल !... चुप क्यों हैं ?" हरिया खाँसता हुआ अपना शिथिल शरीर लेकर उठ खड़ा हुआ और आकर सुखिया के पास खड़ा हो गया । उसकी चौड़ी हथेली चट्ट से सुखिया के गाल पर जा बैठी । सुखिया दर्द से कराह उठी—"मैं सब जानता हूँ—तेरी नस-नस पहचान गया हूँ । तेरी बीमारी का कारण मैं अच्छी तरह समझ चुका हूँ ..." हरिया क्रोध के आवेग से काँप रहा था और सुखिया भय से सिमटी जा रही थी—"बोल नादान ! सूअर की

बच्ची ! किससे मुँह काला किया ?...."

"भैया...." चिल्ला पड़ी सुखिया !

"चुप कमीनी कहीं की !....क्या घाट पर अकेली इसीलिए जाती थी कि मुँह में कालिख लगा ले, सात पीढ़ी तक की मर्यादा मिट्टी में मिला दी—बोल ! कौन है वह आदमी, जिसने तुझे बरबाद किया है ? कौन है वह कमीना, जिसने हमें नीच जानकर हमारी प्रतिष्ठा पर आघात किया है ? बोल..." हरिया लपककर झोपड़ी में से अपनी कुल्हाड़ी उठा लाया—"बोल बता उसका नाम ?...."

शोर सुनकर हरिया की माँ भी बाहर निकल आई—"क्या है रे, जो मेरी बिटिया को इस तरह बिगड़ रहा है ?..."

"बड़ी आई बिटिया वाली !...."हरिया ने मुँह बिचकाया "माई ज्यादा दुलार अच्छा नहीं होता । तू तो सब जानती होगी, फिर मुझसे पहले ही क्यों नहीं कहा ? इससे पूछ किस आदमी ने हरिया के कुल को दाग लगाया है—मैं उस आदमी का सर काटकर यों फेंक दूँगा !' और हरिया ने जोरों से अपनी कुल्हाड़ी सर के ऊपर सून्य में घुमायी । उसकी माँ डरकर पीछे हट गई । सुखिया काँपती हुई जाकर झोपड़े में छिप गई ।

"तू सब हाल जानती है माई ! बता न ?..." हरिया बोला— "उफ् ! जरा-सी भूल के कारण कैसा अनर्थ हो गया । मैं जानता हूँ माई कि सारा दोष सुखिया का नहीं है ..."

"तू पागल हो गया है क्या ? फेंक इस कुल्हाड़ी को और तबियत ठिकाने करके बैठ..."

"तू बता जल्दी..." गरज पड़ा हरिया—"नहीं तो अभी इस छोकरी की टाँग पकड़ कर चीर दूँगा ।"

"क्रोध न कर बेटा । भूल सभी से होती है । सुन मैं बताती हूँ— "सुखिया अकेली 'कोलतारा' पर जाती थी । एक दिन छोटे सरकार के भाई तारक बाबू उधर आ निकले ..कोई बात नहीं बेटा !...सब ठीक हो जायगा । । सुखिया अब बाहर नहीं निकलेगी ।

बिरादरी वालों को जरा भी सन्देह न होगा...''

''तारक की यह हिम्मत !...क्या हम गरीबों की प्रतिष्ठा बालू से निर्मित भीत है, जिसे जब चाहा नष्ट कर डाला। सभ्य कहलाने वाले ये बाबू हमसे भी गये गुजरे हैं, महापतित हैं।...'' हरिया क्रोध से कह उठा। उसकी आँखें अंगारों के समान लाल हो गई थी। कुल्हाड़ी कन्धे पर रखता हुआ वह बोला—''तुम लोग यहीं रहना, मैं अभी आया...''

''न जा बेटा, उसके पास ! वह बड़ा धूर्त है, जमींदार का भाई है''

''कोई भी हो, मैं उस दुष्ट की गरदन धड़ से अलग करके ही रहूँगा''—गरजा हरिया और धप्प-धप्प पग बढ़ाता हुआ दृष्टि से ओझल हो गया।

तारक अपने बाहरी कमरे में बैठा था। अधर भीतर कमरे में सो रहा था। रामू कहीं गया हुआ था! हरिया कन्धे पर कुल्हाड़ी रखे धड़धड़ाता हुआ सदर दरवाजे के भीतर घुस गया और कड़ककर बोला—''कहाँ हैं तारक बाबू ?''

उसका तीक्ष्ण स्वर सुनकर तारक कमरे से बाहर निकल आया हरिया का उग्र रूप देखते ही तारक को परिस्थिति समझते देर न लगी। उसने तर्जनी अंगुली होठों पर रखकर हरिया को चुप रहने का संकेत किया और उसे अपने पास आने को कहा। हरिया तारक के कमरे में आया। तारक बोला—''क्यों रे, शराब अधिक पी ली है क्या ?''

''शराब पीने पर भी हम लोग आप जैसा नीच कर्म करते हुए हिचकते हैं। गाँव की बहू बेटी पर कुदृष्टि डालते हुए हमारी आत्मा काँपती हैं...''

''देख धीरे-धीरे बोल ! भीतर अधर भाई सो रहे हैं, उनकी नींद उचट जायगी....हाँ, तो तेरा मतलब क्या है ?''

"मैं पूछता हूँ कि मुझ गरीब की इज्जत आपने क्यों बरबाद की? मुँह काला करने के लिए दूसरा स्थान नहीं मिला? मेरे ही गले पर छूरी फेरनी थी? क्यों किया आपने यह सब?...देखिये साफ-साफ बोलिये। यह कुल्हाड़ी मेरी बहन की प्रतिष्ठा का मूल्य समझती है और उसी का प्रतिकार वह लेगी आज..."

तारक ने उसकी दृष्टि बचाकर, मेज की दराज से रिवाल्वर निकाल कर इसकी ओर लक्ष्य करते हुए कहा—"जरा होश में बातें कर बे, धोबी के बच्चे! नहीं तो देख, यह काला निशाचर जैसा रिवाल्वर छेद कर रख देगा तेरे बदन को। तू साफ-साफ सब बात कह। अब तक मेरी समझ में कुछ नहीं आया है।"

"समझ में क्यों आयेगा, तारक बाबू..." हरिया नरम पड़कर बोला—"हमें उजाड़ कर कहते हो, कुछ समझ में नहीं आया!... सुन लो तारक बाबू, सुखिया को गर्भ रह गया है...."

"गर्भ?...किसका गर्भ?..." तारक कृतिम आश्चर्य से बोला।

"तुम्हारा और किसका..."

"पागल है तू! सुन, मुझसे सुन!..." तारक धीरे से बोला—"गर्भ अधर भाई का है...सावधान! आँखें लाल न कर! अधर कुमार की प्रतिष्ठा मेरी प्रतिष्ठा है—और उनकी बदनामी मेरी बदनामी...है याद रख! अगर गाँव में जरा भी अधर भाई की बदनामी फैली तो जीवित न छोड़ूँगा!..."

हरिया अवाक था। क्या करे, क्या न करे उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तारक ने तिजोरी में से सौ-सौ रुपये के दस नोट निकालकर हरिया के हाथ पर रख दिए—"यह ले इन रुपयों में अपना निर्वाह कर। सुखिया को जरा भी कष्ट न हो। उसे घर से बाहर न निकलने देना— कोई भी जान न पायेगा। बच्चा होते ही मुझे दे जाना। मैं उसके पालन-पोषण का प्रबन्ध कर दूँगा समझा।

हरिया ने नोट मुट्ठी में मरोड़ लिए। कुल्हाड़ी कन्धे पर से उतार कर हाथ में ले ली। नोटों को देखकर उसका सारा क्रोध पानी के

बुलबुले की तरह क्षणमात्र में विलीन हो गया।

मानव पर दानव की विजय हुई—इज्जत पर दौलत हावी हो गया।

१८

मनुष्य-जीवन विविध संघर्षों का आगार है—अगम कष्टों, असहनीय यातनाओं तथा दुरुह चिन्ताओं से अप्लावित है। प्राणिमात्र की जीवनधारा भयानक कण्टकाकीर्ण मार्ग से प्रवाहित होती है। मनुष्य सोचता है, दुनिया फूलों की सेज है—मगर अनुभव उसे शीघ्र ही बता देता है कि उसका विचार पूर्णतया आधारहीन है।

इस संसार रूपी जीवन-क्षेत्र में सर्वदा सत्य ही की विजय नहीं होती! कभी-कभी असत्य की भी विजय हो जाती है। अधिकांशतः ऐसा ही होता है, कि सत्यमार्गी मनुष्य नाना प्रकार के कष्ट झेलता हुआ जीवन-यापन करता है और कुमार्गी कुटिलता की आड़ में सुख पूर्वक अपने दिन बिताता है। ऐसा क्यों होता है? इसमें किसका दोष है?

यह सब कालचक्र है—कर्मानुसार सभी को आगे-पीछे शुभा-शुभ का फल प्राप्त होता है। बेचारा अधर, निरपराध तथा अस्सहाय, बुरी तरह कालचक्र का शिकार हो चुका था। परिस्थिति इतनी प्रतिकूल तथा भयावह हो गई थी कि वह पूर्णतया पागल-सा हो उठा था। नियति उसे पूर्णतया नष्ट कर देने पर तुली थी। आरम्भ ही से उसे अनेकानेक यन्त्रणायें सहन करनी पड़ी थी, और उसका प्रतिद्वन्दी तारक प्रसन्नतापूर्वक गुलछर्रे उड़ा रहा था।

आजकल अधर का जीवन पूर्ण रूप से अशान्त हो उठा था। उसे कर्ण कुहरों के अन्तस्थल में, रात दिन कोलाहल-सा मचा रहता। मस्तिष्क की गरमी और विकट मानसिक चिन्ताओं से व्याकुल होकर वह विक्षिप्त-सा हो गया था! क्या करें? कहाँ जाय? कुछ भी उसकी समझ में नहीं आता था। कभी-कभी वह इतना उत्तेजित हो उठता

था कि सम्हालना कठिन हो जाता था।

जमींदारी का सारा कार्य तारक देख रहा था! मनमाना लूट-खसोट हो रहा था और अत्याचार से प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी।

मानसिक अशान्ति जब शरीर में घर कर लेती है तो वह शरीर को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जिस प्रकार घुनी हुई लकड़ी, अधर दुस्सह चिन्ताओं को किसी तरह सहन कर रहा था।

जब मानसिक-दावानल से अधर अत्यधिक व्याकुल हो जाता तो तारक से वही दवा माँगता, जिसे पीकर वह सांसारिक झंझटों की सुध भूल जाता।

अधर जान गया था अब कि जो दवा उसे इतनी शान्ती पहुँचाती है, जिसे पीते ही उसके हृदय की ज्वाला शान्त हो जाती है, सुख-शांति का श्रोत प्रवाहित होने लगता है वह एक घृणित वस्तु है... मद्य है, शराब है।

सब कुछ जानते हुए भी वह विवश था। मदिरा का सेवन अब वह छोड़ नहीं सकता था। इस संसार में उसके लिए केवल एक ही वस्तु शांतिप्रदायिनि थी—वह थी मदिरा।

"अब अधिक न पियो अधर भाई?"—तारक ने कहा। आज अधर काफी पी चुका था।

"दारुण ज्वाला से जला जा रहा हूँ तारक!..." अधर अस्त व्यस्त स्वर में बोला—"और दो! ऐसा पिलाओ आज कि मैं सब कुछ भूल जाऊँ। हृदय की सारी उद्विग्नता दूर हो जाय—और दो—और पिलाओ..."

"लो!..." तारक की क्रूर मुखाकृति पर भयानक मुस्कान खेल उठी। उसने दो तीन पेग अधर को और दिये। अधर पर शराब ने पूर्णतया अधिकार कर लिया। उसके पैर काँपने लगे। मुँह से फेन बह चला। रह-रहकर वह पागलों-सा अट्टहास करने लगा। उसने अपनी प्रज्वलित आँखें तारक की आँखों में डालकर

कहा—"तुम तारक हो न ? मेरे सबसे बड़े हितैषी, मेरे भाई, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। इतना प्रसन्न कि अपना सब कुछ तुम्हें दे सकता हूँ—बोलो ! क्या चाहते हो तुम ? मैं आज तुम्हें कोई-न-कोई वस्तु अवश्य दूँगा। यह जमींदारी, यह हवेली, ...बोलो, क्या चाहते हो ?"

"दोगे अधर भाई ?" तारक बोला—"जो मैं माँगूँ दे सकोगे ?"

"दूँगा ! बोलो...."

"मैं ताऊ का वसीयतनामा चाहता हूँ !"

"बस इतती छोटी-सी याचना ?"—लड़खड़ाते हुए पैरों से अधर उठा। सेफ खोलकर वसीयतनामा निकाल लाया और तारक के हाथ में देकर बोला—"लो ! और कुछ माँगना हो तो माँग लो..."

तारक ने ध्यानपूर्वक वसीयतनामा देखा, फिर जेब में रख लिया। एक दूसरा कागज, जिस पर पहले ही से कुछ लिखा हुआ था। निकालकर अधर के सामने रख दिया। बोला—"इस पर हस्ताक्षर कर दो अधर भाई !"—उसने जेब से फाउन्टनपेन निकाल कर अधर के हाथ में पकड़ा दी। अधर ने बिना देखे उस कागज पर हस्ताक्षर कर दिया।

तारक ने इस कागज को भी सावधानी-पूर्वक जेब में डाल लिया।

"तुम बड़े अच्छे हो अधर भाई !..." तारक ने अधर को पलंग पर लिटाते हुए कहा।

"तू बड़ा भोला है, तारक !..." अधर लिहाफ में मुँह ढांकता हुआ बोला।

* * * *

हिना की हत्या करने के अपराध में विमल चुपचाप, बिना विरोध किये जेल चला गया। विमल वास्तव में क्या अपराधी था ?... नहीं ! वह भी उतना ही निरपराध था जितना कि अधर, मगर भाग्य चक्र इतना प्रबल था कि वह चाहकर भी अपने को बचा नहीं सकता

था, इसलिए मौन रह गया।

जिस समय भीतर से रिवाल्वर की आवाज आई थी। उस समय विमल पहला व्यक्ति था, जिसकी नींद सर्वप्रथम खुली। वह शीघ्रता से उठकर भीतर की ओर दौड़ा—इस शंका से कि अधर के ऊपर कोई विपत्ति तो नहीं आई। मगर भीतर पहुँचते ही उसने हिना के कराहने की आवाज सुनी। वह दौड़ा हिना के कमरे की ओर। आकर देखा—दरवाजे पर रिवाल्वर पड़ा है। उसने आश्चर्य के साथ वह रिवाल्वर उठा लिया और उसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। ठीक उसी समय तारक आ पहुँचा। कुछ ही देर बाद रामू भी आ गया। उसने भी उसी को अपराधी समझा। फलतः वह निरपराध अभागा, निर्दयी पुलिस के हवाले कर दिया गया।

कारागार में विमल को असीम कष्ट सहने पड़े। उस पर अभियोग लगा, परन्तु उसकी ओर से दौड़-धूप करने वाला कोई न था। न्यायाधीश के पूछने पर उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से केवल इतना ही कहा—"मैंने ही हत्या की है"—इसके बाद वह एक शब्द भी न बोला। वकीलों, बैरिस्टरों तथा न्यायाधीश ने उससे कितने ही प्रश्न किये, परन्तु वह चुप ही रहा।

उस दिन न्यायालय ठसाठस भरा था। सभी के नेत्र अपराधी विमल की सौम्य मूर्ति को देख रहे थे। सभी को विश्वास था कि वह अवश्य ही छोड़ दिया जायगा, मगर सबकी आशाओं पर पानी फेर कर न्यायाधीश के कठोर शब्द न्यायालय में गूँज उठे—"फाँसी।"

उपस्थित जनता हाहाकार कर उठी। विमल के नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक कर पृथ्वी पर आ रहे। पुलिस के घेरे में वह फाँसी घर भेज दिया गया। फाँसी की तिथि एक महीना आगे थी।

उस दिन संध्या को तारक अधर के पास बैठा था। इधर-उधर की बात हो रही थी, परन्तु अधर का मन नहीं लग रहा था। अधर को उत्तेजित करने का अनुकूल अवसर देख, वह बोला—"आज विमल

का फैसला हो गया ..."

"फैसला ! किस बात का फैसला ?" अधर को मानों कुछ याद ही नहीं था, परन्तु एकाएक कोई बात स्मरण हो जाने से वह चौंक पड़ा—"उफ ! फैसला ?...हो गया फैसला !...अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ ।"

"एक महीने बाद उसे फाँसी होगी ।"

"फाँसी ? .." भय, आवेग, दुःख तथा अशांति से अधर चिल्ला उठा—"फाँसी होगी...किसे ? किसको फाँसी दी जायगी ? .." अधर का हृदय न जाने क्यों धड़कने लगा । उसके अन्तस्थल में ममत्व का दारूण कोलाहल उठ खड़ा हुआ—"उफ् ! विमल निर्दोष था—निर्दोष था वह ! कौन फाँसी देगा उसे ? सच कहता हूँ, मेरा हृदय कहता है, मैं कहता हूँ—निरपराध है वह ! उसने हत्या नहीं की थी—वह किसी दूसरे का काम रहा होगा—मैं बचाऊँगा उसे ...."

'वह नही बच सकता न्याय अटल है !...' तारक क्रूर हँसी हँस कर बोला ।

"न्याय अटल है !...झूठ !...न्याय निर्दोष का गला काटता है और अपराधी निर्दोष बने हुए घूमते हैं—उसे बचाने का उपाय करुँगा...मैं हाइकोर्ट में अपील करूँगा..."

"अपील के लिए रुपये चाहिए, वह कहाँ है तुम्हारे पास ?..." तारक की आवाज कठोर होती जा रही थी ।

"रुपये की कौन कमी है ? मेरी जमींदारी..."

"इस जमींदारी पर अब तुम्हारा नहीं मेरा अधिकार है, अधर भाई !...." तारक जोरों से हँस पड़ा—"अब इस जायदाद का एक पैसा भी तुम खर्च नहीं कर सकते...तुमने सारी जायदाद मेरे नाम बेची लिख दी है और उसका पूरा दाम मुझसे पा चुके हो...मेरे पास हस्ताक्षर की रसीद मौजूद है..."

अधर क्रोध से काँप उठा—"कैसी बेहूदी बातें कर रहे हो तुम ?"

"मेरे पास ताऊ वाला वसीयतनामा भी है, देखो..." कहते हुए तारक ने जेब से दो कागज निकाल कर अधर के सामने कर दिये— "यह है ताऊ वाला वसीयतनामा और यह है तुम्हारी दी हुई रसीद तथा इकरारनामा—यह देखो अपना हस्ताक्षर !..."

सब कुछ देखकर अधर के आश्चर्य की सीमा न रही। तारक ने दोनों कागज पुनः जेब में रख लिए। इस समय अधर क्रोध से कांप रहा था। आज एकाएक उसके नेत्रों के सामने से अन्धकार का आवरण छिन्न-भिन्न हो गया। आज उसके समझ में आया कि वह जिसे इतने दिनों से विश्वासपात्र समझता आ रहा था वह विश्वासघाती है। वह विषैला सांप है, जिसके दंश की औषधि नहीं।

अधर का मस्तिष्क एक बारगी घूम गया। विन्दु की, विमल की और स्वयं की दुर्दशा का कारण यह तारक ही होगा, यह उसने स्वप्न में भी नहीं समझा था। आज इतने दिनों के बाद उसे विन्दु की निर्दोषिता का प्रमाण मिला ! आज उसने समझा कि बेचारा विमल निरपराध था। सारे अनर्थों का मूल कारण यह तारक ही है।

अधर इतना क्रोधाभिभूत हो गया कि वह उठकर खड़ा हो गया। बोला—"तू ही मेरे सर्वनाश का कारण है..निकल जा यहाँ से.... हट जा मेरी आँखों के सामने से..."

"किसे आज्ञा दे रहे हो तुम ?...." गरज पड़ा तारक।

"तुझे आज्ञा दे रहा हूँ...रामू !...रामू... !...." अधर चिल्ला पड़ा। रामू दौड़ा हुआ आया—"क्या है सरकार ?"

"इसे बाहर कर दे...इसी समय !"

"सरकार, मालिक !" रामू अवरुद्ध कण्ठ से बोला।

"मालिक ? कौन है तेरा मालिक ?" अधर के स्वर में कम्पन था।

"तुम भूल रहे हो अपने आप को..." तारक हंस पड़ा—

"आज वह दिन नहीं रहा कि तुम मुझे निर्दयतापूर्वक हण्टर से मारकर रामू को मुझे बाहर निकाल देने की आज्ञा दोगे। आज वह दिन है कि मैं हण्टर मारूँगा और ..."

लपककर तारक ने अधर का वही हण्टर खूँटी पर से उतार लिया और सटासट वह हण्टर अधर की पीठ पर जा पड़ा—"रामू ! इसे बाहर कर दे !...." तारक ने रामू को आज्ञा दी।

रामू ने दयार्द्र दृष्टि से अधर की ओर देखा और उसे गोद में उठाकर कमरे से बाहर बैठा आया। तारक यह कहते हुए बाहर चला गया कि—"अब इस घर में तुम्हारा रहना नहीं हो सकता...."

१८

पाप का परिणाम अच्छा नहीं हुआ करता, परन्तु सुखिया ने जो पाप किया था, उसका परिणाम बड़ा ही सुन्दर रूप लेकर इस संसार में अवतरित हुआ, एक कोमल बालक के रूप मे। हरिया दरवाजे पर बैठा था। बालक का क्रन्दन सुनते ही भीतर घुस आया। सुखिया जो कि प्रसव-पीड़ा से व्याकुल थी, चीख पड़ी—"मेरा बच्चा ! मेरा लाल !"

उसकी माँ ने कहा—"जाने दे बचवा ! क्यों इस सुकुमार बच्चे को निस्सहाय फेंक आयेगा ?"

"माई रे।...." हरिया चिल्लाकर बोला—"अपमान सहन करने के पहले मैं मर जाना अच्छा समझता हूँ—फिर इस बच्चे को तारक बाबू के यहाँ कोई कष्ट न होगा..." हरिया ने उस नवजात शिशु को गोद में उठा लिया। उसकी माँ पछाड़ खाकर गिर पड़ी। सुखिया पहले ही बेहोश हो चुकी थी।

रात्रि के ग्यारह बजे थे। हरिया सांय-सांय करती हुई नीरव रजनी को चीरता हुआ तारक के घर जा पहुँचा। उसके सामने आकर खड़ा हो गया गोद का बच्चा तारक के हाथों पर रख दिया।

तारक क्रूरता की हँसी हँस पड़ा। बोला—"अच्छा किया तुमने। लो अपना इनाम! .." तारक ने पुनः हरिया को सौ रुपये के पाँच नोट दे दिये। धन का जूता खाकर हरिया प्रसन्नतापूर्वक लौट आया।

तारक ने उस बच्चे का मुँह देखा—कितना उज्ज्वल, कितना सुन्दर—मगर एका-एक उसकी भृकुटी भयंकर हो गई। उसका एक हाथ बच्चे के गले पर जा पड़ा। जीवन-ज्योति कुछ क्षीण हुई फिर तेज!....और दूसरे ही क्षण उस नन्हें-से शिशु का सर एक ओर को लटक गया।

अधर इस समय अपने कमरे में सो रहा था। उसने आज तारक की आलमारी से चुराकर खुब शराब पी थी, यही कारण था कि वह सब चिन्ताओं से छुटकारा पाकर प्रगाढ़ निद्रा में सो रहा था। तारक शिशु का मृत शरीर लेकर उसके कमरे में आया और उसे अधर के पलंग पर लिटा दिया। वह अधर का पूर्णतया सर्वनाश करने पर कटिबद्ध था।

कुछ ही देर बाद ताऊ का वह विशाल भवन लाल पगड़ी वालों से भर गया। अधर उस समय भी नशे में मदहोश सोया हुआ था और उसके बगल में पड़ी हुई थी उस बच्चे की लाश!

उसे थानेदार ने आकर जगाया। हड़बड़ाकर वह जाग उठा। पुलिस और बगल में बच्चे की लाश को देखकर वह किंकर्तव्य विमूढ़-सा हो गया, परन्तु तुरन्त ही सब मामला उसकी समझ में आ गया। वह समझ गया कि तारक ने ही इस नवजात शिशु की लाश उसके बगल में रखकर उसे गिरफ्तार कराने के लिए पुलिस बुलवा लिया है।

थानेदार के पूछने पर उस बच्चे की लाश के विषय में अधर कुछ भी न बता सका। तारक झूठी बातें बनाकर, पहले ही थानेदार को समझा चुका था। अतः अधर गिरफ्तार कर लिया गया। क्रोध से दाँत पीसता हुआ अधर अपने प्यारे घर से विदा हुआ।

अधर पर मुकदमा चला। अपराध पूर्णतया प्रमाणित हो गया कि उसी ने उस बच्चे की हत्या की है। अपराध गुरुतर था, परन्तु उसके पागलपन का ध्यान कर, न्यायाधीश ने उसे केवल दो महीने साधारण कारावास का दण्ड दिया।

अधर यातनापूर्ण बन्दी-जीवन व्यतीत करने लगा। अब वह पूर्णतया पागल हो गया था। दिन-रात विक्षिप्त-सा वह काल कोठरी में चिल्लाता रहता—यह सारी दुनिया छलनामयी है, मानवमात्र पापी है—सारी माया झूठी है।

भोजन आता परन्तु वह न खाता, पानी आता मगर न पीता दिन रात अश्रुपूर्ण नेत्रों से काल-कोठरी की लोह-शलाकायें पकड़ कर खड़ा रहता। जब कोई वार्डर उधर से निकलता तो चीख पड़ता—"तू ही तारक है....धूर्त तारक!"

"तू तारक है ..धूर्त तारक!..." अधर का यह चिल्लाना कैदी नम्बर १३६ के कानों में भी पड़ा। वह फाँसी की आज्ञा पाया हुआ अभियुक्त था। बीस दिन बाद फांसी होने वाली थी उसे।

यह स्वर कान में पड़ते ही वह सोचने लगा—"यह तो अधर की आवाज है। वह यहाँ कैसे आया? क्या दुष्ट तारक ने उसे भी इस दसा को पहुँचा दिया?..."

एक वार्डर के पास आने पर उस कैदी ने पूछा—"भाई यह कौन है, जो दिन-रात चिल्लाया करता है?"

"एक पागल कैदी है—अभी हाल ही में आया है..." वार्डर ने कहा। जरूर वह अधर होगा—मन ही मन वह बड़बड़ाया, फिर वार्डर से बोला—"भाई उस कैदी से भेट करना चाहता हूँ। क्या तुम इतनी सुविधा दिला सकते हो?"

मरणोन्मुख कैदी की आकांक्षा पूरी हो गई। उस पागल कैदी से भेंट करने की आज्ञा मिल गई। दो वार्डरों के साथ वह अधर के कठघरे के पास लाया गया। अधर उसे देखते ही चिल्ला उठा—"विमल! तुम निर्दोष हो!...दोषी तारक है, वही धूर्त तारक!"

अधर की कोठरी का दरवाजा खोल दिया गया। विमल ने अधर के शरीर को अपनी भुजाओं मे भर लिया। उसने अवरुद्ध कण्ठ से पूछा—"अधर, मुझे तुम निर्दोष समझते हो न ?"

"मेरा रोम-रोम तुम्हें निरपराध समझता है, विमल !...ओह ! मैं अन्धा था, तुम जैसे देवता को न समझ-सका।" रोने लगा अधर। कुछ क्षण के लिए उसका सारा पागलपन दूर भाग गया था। दोनों वार्डर इस मधुर-मिलन को देखते रहे।

"एक भेद..." कहता-कहता विमल रुक गया। अधर ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"क्या कहना चाहते हो ? कहो न, विमल ?"

आज वर्षों से ऐसा सुअवसर खोज रहा था, कि मैं तुमसे अपना भेद प्रकट कर दूँ, परन्तु वह अवसर कभी न मिला। यदि कभी मिला भी, तो तुमने उसे सुनना ही स्वीकार न किया। इसलिये अब तक वह गुप्त भेद अन्दर ही अन्दर तूफान की सृष्टि करता ही रहा। आज उस तूफान को बाहर निकाल देना चाहता हूँ। अब मेरे जीवन की अवधि समाप्त हो चली है। फांसी का फन्दा मेरे गले में शीघ्र ही पड़ने वाला है...."

अधर ने उसकी ओर आश्चर्यचकित मुद्रा से देखा। "अपने जीवन की गाथा, अपनी यन्त्रणाओं की करुण कहानी, आज तुम्हें सुनाता हूँ। सुनकर तुम आश्चर्य करोगे कि विधि की विडम्बना कितनी भयानक है !"

"हमारा कुटुम्ब धनहीन नहीं था। अच्छी तरह हम लोग अपने दिन व्यतीत कर रहे थे ! हम दो भाई थे। एक भाई अवस्था में मुझसे छः वर्ष छोटा था। नाम था उसका धवल !...."रुककर विमल ने अधर के चेहरे को ध्यानपूर्वक देखा। अधर तन्मय होकर विमल के अतीत जीवन की कहानी सुन रहा था। विमल कहने लगा—"मेरा छोटा भाई अत्यन्त नटखट था। कभी-कभी उसका हठ इतना बढ़ जाता था कि घरवाले घबरा जाते थे। जब मेरी अवस्था दस वर्ष की और उसकी लगभग चार वर्ष की थी, तो हम लोग गंगादशहरा

जलोत्सव देखने के लिये शहर आये। शहर से हमारा गाँव पचीस कोस दक्षिण था। बस पर हम लोग आये थे। हम दोनों भाई मेला देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। वहीं एक गोदना गोदने वाला बैठा मशीन से गोदना गोद रहा था। मैंने पिताजी से अपनी कलाई पर एक गुदना गुदवाने को कहा। आज्ञा मिलने पर मैंने एक साँप का चित्र अपनी कलाई पर गुदवा लिया।"

"साँप का चित्र ?..." अधर आश्चर्य से बोला। उस क्षण उसे भी अपनी कलाई पर गुदे हुए साँप की याद आ गई।

"हाँ, बहुत अच्छा साँप गुदा था वह। गुदना देखकर मेरा भाई भी मचल गया। कहने लगा, मैं भी ऐसा ही साँप गुदवाऊँगा। बहुत मना करने पर भी उसने अपना हठ न छोड़ा और ठीक वैसा ही अपनी कलाई पर गुदवा लिया...."

"ठीक वैसा ही..."अधर जोर-जोर से साँस लेने लगा। विस्मृति काई की तरह फट गई और सारी स्थिति उसके सामने शीशे की तरह स्पष्ट हो गई।

"उसी दिन मेले में मेरा वह नटखट भाई खो गया। आज तक न मिला वह..."विमल ने कहा तो अधर चिल्ला उठा—"न....मिला न मिला !...." वह धम्म से भूमि पर बैठ गया।

विमल ने उसे उठाया और अपनी कलाई उसके सामने कर दी। आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से अधर ने देखा, ठीक वैसा ही साँप का चित्र विमल की कलाई पर गुदा है। वह पागलों की तरह कभी अपनी कलाई पर के गुदने को देखता, कभी विमल के गुदने से उसका मिलान करता।

"पहले ही दिन तुम्हारे हाथ का गुदना देखकर मैं सब बातें समझ गया था..." विमल ने दूसरा प्रमाण दिया—तुम्हारी दाहिनी जाँघ के ऊपर एक बड़ा-सा तिल भी है ?"

अधर चीख पड़ा। दौड़कर विमल से लिपट गया—"भैया !.... उसके मुँह से केवल इतना ही निकला और वह चेतनाहीन होकर

जमीन पर लुढ़क पड़ा। अश्रु-प्लावित नेत्रों से विमल ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। उसी समय वार्डर का कठोर स्वर कानों में पड़ा—"समय हो गया है।"

चेतनाहीन अधर को छोड़कर विमल उठ खड़ा हुआ। उसे लगा, वह अपने प्राण को अधर के पास छोड़े जा रहा हो।

उफ ! ईश्वर को यह स्वीकार न था कि दोनों कुछ देर तक मिलकर अपने हृदय की ज्वाला शान्त करते ! विमल का हृदय हाहाकार कर उठा। अब वह अधर को नहीं देख सकेगा। इस जीवन में नहीं, कभी नहीं। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित होती रही। आखिरी बार उसने अधर के क्लान्त श्रीहीन मुख पर दृष्टिपात किया अधर निश्चल पड़ा था—–चेतनाहीन।

विमल वार्डर के साथ अपनी कोठरी में जाने लगा। पास का एक कैदी उस समय झूम-झूमकर गा रहा था—–"दो फूल खिले एक साथ मगर, किस्मत ही जुदा-जुदा है..."

१६

सूर्य की किरणें धीरे-धीरे ऊपर को चढ़ रही थी। प्रातःकाल का जनरव धीरे-धीरे बढ़ रहा था ! सेन्ट्रल जेल के विशाल प्रांगण में फाँसी का फन्दा लटक रहा था। लौह श्रृंखला में आवद्ध तथा सिपाहियों से घिरा हुआ विमल तख्ते पर जा खड़ा हुआ। दो जल्लादों ने आगे बढ़कर उसे बन्धन-मुक्त किया।

विमल फाँसी के तख्ते पर आँखें मूँद, निश्चल, निस्तब्ध खड़ा था—–कदाचित् इस जगत् की माया से मुक्त होने के पहले ईश-बन्दना कर रहा था। उसके मुख पर एक अद्‌भुत तेज था, जिसकी प्रखरतर आभा छिटककर आस-पास के वातावरण को आलोकमय कर रही थी और संकेत कर रही थी कि देखो, सहनशीलता इसे कहते हैं !

फाँसी का समय निकट आ गया। एक जल्लाद ने आगे बढ़कर

विमल से कहा—"मरणासन्न कैदी ! तुम्हारी अन्तिम आकांक्षा कोई है ?...बोलो !"

विमल चुप रहा मानो कुछ सुना ही नहीं उसने। जल्लाद ने अपनी बात फिर दुहराई। इस बार विमल ने केवल इतना ही कहा—"कैदी नम्बर १९७ से मिलना चाहता हूँ।"

कैदी नम्बर १९७ उपस्थित किया गया। वह पागल चीखता चिल्लाता हुआ आया। उसकी मुखाकृति पर पागलपन का उद्वेग था और हृदय में थी चिन्ता की धधकती हुई प्रचण्ड ज्वाला !

विमल की दृष्टि उस पागल कैदी पर पड़ी। वह फाँसी के तख्ते से उतर आया और अधर से लिपट कर बिलख उठा। उस पागल के नेत्र सूखे न रह सके। दोनों रोये, जी भरकर रोये—

"विमल भैया ! क्या तुम सचमुच जा रहे हो ? मुझे अकेला छोड़कर ?..." पागल अधर ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखते हुए विमल से पूछा।

"नहीं-नहीं अधर !..." विमल बोला—"मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। मैं तो इस नश्वर जगत की माया छोड़कर जा रहा हूँ—लेकिन अधर यह तुम्हारी कैसी दशा ?...."

"मेरी दशा कुछ न पूछो भैया ! इस समय मेरा हृदय हाहाकार कर रहा है। पूर्व स्मृति, भीषण ज्वाला बनकर मुझे जला रही है। मेरे अन्तस्थल में भयानक ज्वाला धधक रही है..."

कुछ देर तक सन्नाटा रहा, तत्पश्चात विमल ने पुकारा... "अधर !"

"भैया ?...."

"फिल्म के उस विचित्र योगी की याद है, जो छोड़ जगत की माया गा रहा था ?..."

"हाँ !" उत्तर मिला।

"वही गाना फिर गाओ, मेरे अधर ! मैं तुम्हारे मुँह से वह गाना फिर सुनना चाहता हूँ...."

"अच्छा !..." कहकर उस पागल ने अलाप लिया और गाने लगा—"छोड़ जगत की माया..."

मधुर स्वर से जेल गूंज उठा। प्रहरी एवं अधिकारी एकाग्र चित होकर उस अद्‌भूत गायन का रसास्वादन करने लगे।

विमल फाँसी के तख्ते पर लौट आया क्योंकि फाँसी का समय हो गया था। विमल का मुँह कपड़े से ढककर उसके गले में कराल काल का विकराल फन्दा डाल दिया गया। दो विकराल जल्लादों ने आगे बढ़कर रस्सी खींच ली। विमल के प्राण पखेरू उड़ गये...और उसने जगत् की माया छोड़ दी !

उधर उस पागल का गाना अभी तक जारी था। वह आँखें बन्द किये मस्ती से झूम-झूमकर गाता जा रहा था। उसे दीन-दुनिया की सुध नहीं रह गई थी। वह नहीं जानता था कि उसके आस-पास क्या हो रहा है और क्या हो गया है ? वह तो गाने में तन्मय था।

* * * *

कारागार के सारे पदाधिकारी इस पागल कैदी से ऊब उठे थे। उसे कठिन यन्त्रणा दी जाती थी, मगर उसका पागलपन दूर न होता था। वह रात-रात भर चिल्लाता रहता—कभी बिन्दु का नाम लेता, कभी विमल का और कभी तारक का नाम लेकर उसे गालियाँ दिया करता था। उन्मत्त की तरह नाचता, अपने बालों को नोचता दाँतों से अपने ही अंग काटता रहता—

जब से वह यहाँ आया था, किसी दिन भी उसने ठीक से भोजन नहीं किया था, पानी नहीं पिया था। अधिकारियों को उसके विषय में घोर चिन्ता हो रही थी।

कभी-कभी वह पागल किसी वार्डर से कहता—"तुम मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ। मैं तारक को यमलोक पहुँचाकर, फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा। मैं तुम्हें रुपयों से लाद दूँगा—सच, बड़ा धनवान हूँ मैं..."

वार्डर उसका पागलपन देखकर हँस देता। उसके हँसने पर वह उत्तेजित हो उठता और कारागार के जंगले को पकड़कर झकझोरने लगता।

अर्द्धरात्रि के समय भी अधर के आँखों के नींद नहीं है। कारागार की कोठरी में बैठा हुआ वह न जाने क्या सोच रहा है। उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है।

एकाएक उसने अपना सर उठाया और जंगले के पास खड़े होकर बाहर की ओर देखने लगा। प्रकृति की अद्‌भुत छटा अधर को अपने प्रति आकर्षित न कर सकी। वह बाहर देखता हुआ बड़-बड़ाने लगा—"लोग मुझे पागल कहते हैं लेकिन क्या मैं सचमुच पागल हूँ? स्त्री-पुत्र, माता-पिता, घर-द्वार सबसे विमुख हो जाना सुख-दुःख का अनुभव न करना एवं आत्म-विस्मृति ही क्या पागलपन है! नहीं-नहीं! वह पागलपन नहीं है—यही जगत की माया को छोड़ देना है। विमल भाई ने भी जगत की माया छोड़ दी और मैंने भी···हा-हा-हा-हा...."

उसने एक विकट अट्‌ठहास किया। उसकी आकृति विकृत हो गई। उसके अट्‌ठहास की विकट ध्वनि चारों ओर गूँज उठी!

दूसरे ही क्षण वह शान्त हो गया! उसकी आँखें पुनः भर आईं। उसने करुणामिश्रित वाणी से पुकारा—"विमल...विन्दु!"

पर उसकी आवाज कैदखाने की निर्जीव दीवार से टकराकर शून्य वातावरण में विलीन हो गई।

२०

सुक्खन माझियों के दल में सबसे समझदार व्यक्ति था। यद्यपि उसकी अवस्था कोई विशेष नहीं थी, फिर भी उसकी सम्मत्ति आवाल वृद्ध सभी मानते थे। उसकी बात पर एकाएक कोई अविश्वास नहीं कर सकता था। यही कारण था कि जब सुक्खन ने कहा कि सरदार ने जिसे लड़का कहकर अपने पास रखा है, वह वास्तव में वह लड़की है,

तो कोई इस बात को काट नहीं सका।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये ,लोगों का सन्देह पुष्ट होता गया। सारे दल में इसकी चर्चा होती रहती, मगर सरदार से सभी डरते थे। किसी का भी साहस नही होता था कि सरदार से इस विषय में कुछ कहे। मगर सुक्खन ने कुछ साहस किया। उसने सरदार की पोल खोलने का बीड़ा उठाया। यह कार्य बड़ा ही कठिन था। सुक्खन भी सरदार से उतना ही डरता था, जितना गिरोह के अन्य लोग। मगर एक दिन उसे अच्छा अवसर हाथ लग ही गया।

उस दिन सरदार प्रातःकाल ही कल्लन को अपने झोपड़े में अकेले छोड़कर, न जाने कहाँ चला गया था। यह अवसर सुक्खन के लिए बहुत उपयुक्त था। वह चुपके से सरदार के झोपड़े में आया। कल्लन एका-एक सुक्खन को आया देखकर भयभीत हो गया, क्योंकि उसने सरदार से सुन रखा था कि सुक्खन अच्छा आदमी नहीं है।

सुक्खन हँसता हुआ आकर कल्लन के सामने खड़ा हो गया। उसने कल्लन की कलाई पकड़ ली और बोला—"देख कल्लन! मुझे अच्छी तरह मालूम हो चुका है, कि तू औरत है और उस्ताद ने तुझे न जाने क्या समझकर लड़के के वेश में रखा है, इस तरह वह दल की परम्परागत रूढ़ियों को अवहेलना कर, सारे गिरोह के मुँह पर कालिख पोत रहा है। परिणाम अच्छा नहीं होगा—न तेरे ही हक में और न सरदार के ही हक में। तुझे उचित है कि इस समस्या को सुलझा दे, ताकि हम इस पतित सरदार को सरदारी के पद से पदच्युत कर दें!...सरदार का यह कार्य सारे दल के लिए अपमान-जनक है...."

"यह तुम क्या कह रहे हो?..." घबराये हुए स्वर में कल्लन ने कहा।

"जो कुछ मैं कह रहा हूँ, तू अच्छी तरह समझ रहा है...." गरजकर बोला सुक्खन—"तुझे सरदार ने अन्धेरे में रखा है।

इसलिए तू नादानी कर रहा है, वास्तविकता को छिपा रखना चाहता है। याद रख ! जिस दिन यह भेद खुलेगा, दोनों के लिए परिणाम भयंकर होगा !"

"मैं पुरुष हूँ...." कहते-कहते कल्लन का गला फँस गया ! भय तथा आवेग ने उसे आगे कुछ भी न कहने दिया। उसकी बात सुनते ही सुक्खन हँस कर बोला—"पुरुष है ? आ तो जरा पंजा मिला ?..." कल्लन के ना नुकर करने पर भी सुक्खन ने जबरदस्ती कल्लन के पंजे में अपना पंजा फसा दिया और जोरों से उमेठ दिया। कल्लन दर्द से चीख उठा।

"क्या हो रहा है, बे ? ..."सरदार का वज्र-सा स्वर सुनाई पड़ा और दूसरे ही क्षण चट से उसकी हथेली सुक्खन के गाल पर जा बैठी। वह तिलमिला कर तड़प उठा—"सरदार।"

"क्या है ?...कमीने !...पाजी !...विश्वासघाती !" गरज पड़ा सरदार !

"एक लड़की को पुरुष-वेष में अपने पास रखकर इतनी धृष्टता करनी अच्छी बात नहीं .." सुक्खन ने साहस संवरण कर कहा।

सरदार क्रोध से चीख पड़ा—"इतनी हिम्मत तेरी ?...तू किससे यह बातें कह रहा है ? सरदार से ?...वही जो तुझ जैसे छोकरों को गेंद-सा उठाकर हवा में फेंक सकता है..." कहते हुए सरदार ने आगे बढ़कर सुक्खन को हाथों में ऊपर उठा लिया और दरवाजे की राह दूर फेंक दिया।

सुक्खन छटपटाता हुआ, अमरावती नदी की वेगवती जलधारा में जा गिरा। चोट तो नहीं आई, मगर उसका क्रोध चरम सीमा पर पहुँच गया।

"कल्लन ?..." सरदार ने पुकारा। कल्लन ने आँसुओं से भींगा हुआ अपना मुँह ऊपर उठाया। सरदार का हृदय रो पड़ा—उफ् ! उसने कितनी निर्दयता से इस कोमल फूल को मसल दिया। उसने कल्लन को उठाकर चारपाई पर बिठा दिया। आप भी उसकी

बगल में बैठ गया।

° ° ° °

धीरे-धीरे दो महीने व्यतीत हुए, मानों दो युग बीत गये। पगले अधर के कैद की अवधि पूरी हो गई। प्रातःकाल होते ही दो वार्डरों ने आकर उसे कोठरी से मुक्त किया और उसके पुराने कपड़े तथा दस रुपये देकर उससे कहा—"देखो, शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत करना। ईश्वर तुम्हे सुबुद्धि दे।"

जिस समय अपने कपड़े पहने हुए तथा हाथ में चमकते हुए दस सिक्के लेकर अधर बन्दीगृह से बाहर निकला, उस समय उसकी अवस्था भयानक थी। दाढ़ी बढ़ी हुई और मुखाकृति म्लान थी। पागलों की तरह इधर-उधर देखता। बक-झक करता हुआ वह चला जा रहा था! उसके मानस-पट पर भयंकर रेखायें खचित थी। उसकी आकृति विकृत थी। कभी, कभी वह चिल्ला उठता था—"मैं अभी इसी वक्त, उसके कलेजे का रक्त पीऊंगा—उसे नष्ट कर दूंगा...."

इसी प्रकार बढ़ता वह इधर-उधर भटकता हुआ थक कर एक खम्भे का सहारा लेकर खड़ा हो गया। आँखें मूंदकर न जाने क्या सोचने लगा। उसके सामने सड़क पर से कितनी ही मोटरें बग्घियां, तथा इक्के निकल गए, परन्तु उसने आँखें न खोली। वह तन्मयता-पूर्वक न जाने किस बात पर विचार कर रहा था। उसकी तन्मयता को इस आवाज ने तोड़ा—"छुरी ले लो! छूरे ले लो. बढ़िया! हलब्बी छूरे!"

अधर ने आँखें खोली, देखा—एक छूरी बेचने वाला सामने से जा रहा है। कितने चमकदार, कितने तेज, कितने भयानक छूरे हैं उसके हाथ में। सोचते ही अधर प्रफुल्लित हो उठा। उसने पुकारा—"ऐ छुरी वाला इधर तो आ..."

एक पागल की आवाज सुनकर छूरीवाला कुछ घबराया, मगर उसके हाथ में रुपये देखकर वह तुरन्त ही उसके पास चला आया—

"ले लो ! बड़े अच्छे छूरे हैं—एकदम हलब्बी !" उसने कहा।

अधर ने छूरों की ओर ध्यानपूर्वक देखा। हाथ-हाथ भर लम्बे छूरे थे...देखकर भय मालूम होता था। अधर ने उसमें से एक छूरा अपने हाथ में उठा लिया। बोला—"कैसा है यह ?"

"बहुत बढ़िया..." बेचने वाले ने कहा।

"मेरे शत्रु का गला काट सकेगा ?—मेरे प्रतिद्वन्दी का खून यह पी सकेगा—मेरी उजड़ी हुई दुनिया बसा सकेगा यह ?..." अधर ने छूरे को अपने हाथ में अजमाते हुए कहा।

"अजी लोहे को घास की तरह काटेगा...."

"तो ठीक..." कहकर अधर ने अपनी मुट्ठी का कुल रुपया उसके हाथों पर रख दिया और आगे बढ़ चला। वह छूरे वाला अवाक हो, आश्चर्यमयी दृष्टि से उस पागल की ओर देखता रहा, जिसने एक मामूली-से छूरे के लिए दुगुना मूल्य चुकाया था।

अधर बढ़ता जा रहा था और छूरे की चमक देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। "कच्च-कच्च काट दूँगा उसका सर और घट-घट पी जाऊँगा उसका रक्त"—वह बड़बड़ाता हुआ चला जा रहा था।

एक निर्जन स्थान पर पहुँचकर अधर पत्थर के एक चबूतरे पर बैठ गया और उस छूरे को पत्थर पर धीरे-धीरे घिसने लगा, मानों उस पर और अधिक धार चढ़ाने का प्रयत्न कर रहा हो। उसी समय एक साधू उधर से गाता हुआ निकला—

"क्यों रँगता है हाथ खून से अपना जीवन रंग ले।
'ग लि अपने मन की नगरिया, स्थिर मन कर पागले।

हैं ? यह साधू क्या गा रहा है। क्यों उसके दहकते हुए हृदय को शांति का सन्देश दे रहा है ?...अधर के हृदय में भयानक रोर उठ खड़ा हुआ।

वह साधू आकर अधर के पास खड़ा हो गया और आश्चर्यमयी दृष्टि से उसका कार्य देखने लगा।

"यह क्या कर रहा है, बच्चा ?..." उसने पूछा।

अधर ने अपनी रक्तात्त आँखें साधू की ओर उठाई, बोला—"इसे धार दे रहा हूँ, तेरा गला काटने के लिए—तू ही तारक है, दगाबाज तारक !...तूने ही मेरी दुनिया उजाड़ी है, तूही तो मेरी सुख शांति भंग की है। तुझे मैं नहीं छोड़ सकता। धारदार छूरे को तेरे कलेजे में घुसेड़ कर अपनी रक्त पिपासा शान्त करूंगा। तेरा रक्त बहेगा यहाँ और प्यासी धरती की प्यास बुझ जायगी"—कहता हुआ अधर छूरा लेकर प्रबल वेग से उस साधू पर झपट पड़ा, परन्तु पास आते ही एका-एक उसकी सारी उत्तेजना विलीन हो गई। वह आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से साधू की ओर देखता हुआ बोला—"है ! तुम तो वह नहीं हो—कौन हो तुम ?...साधू हो ? मुझे क्षमा करना बाबा..." अधर साधू के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।"

"तुम विक्षिप्त हो बच्चा..." साधू बोला—"तुम्हारी मानसिक अवस्था अच्छी नहीं है। धैर्य से काम लो। सारी मानसिक अशान्ति को अपने से दूर रखने का प्रयत्न करो, तुम्हारा कल्याण होगा।"

"असम्भव है बाबा ! मेरा तन, मन, प्राण छटपटा रहा है। अन्तस्थल में भीषण दावाग्नि धधक रही है ! मैं पागल हूँ। दुःख तथा क्लेश के आवेग ने मुझे पागल बना डाला है—अब भी दुनिया को समझने की शक्ति मुझमें है। बिना प्रतिशोध लिए मेरे हृदय का उद्वेग शान्त न होगा..."

प्रतिशोध !....तुम प्रतिशोध लेना चाहते हो ?...तुम अपने शत्रु का विनाश करना चाहते हो ?...." साधू आश्चर्य करता हुआ बोला—"पगले ! प्रतिशोध लेना ममुष्य की शक्ति के बाहर की बात है। मनुष्य में इतनी शक्ति कहां कि वह एक दूसरे को दुःख दे सके। याद रखो, जगत के यावत कार्य सर्व शक्तिमान के संकेत से सम्पादित होते हैं। एक पत्ता भी, एक तिनका भी बिना उसकी आज्ञा के हिल नहीं सकता। शुभ-अशुभ कार्य उसकी आज्ञा पर ही अवलम्बित है। उसने तुम्हारे साथ बुराई की है मगर इसमें

उसका दोष नहीं—दोष है नियति का। उसकी प्रेरणा से उसकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया और उसने तुमको दुख दिया ! दुःख तुम्हारे भाग्य में लिखा था, ईश्वर चाहता था कि तुम ऐसी परीक्षा दो—इस लिए तुम पर दुख का पहाड़ टूट पड़ा। इसमें किसी का दोष नहीं—यह भवितव्य है, होनहार है, ईश्वरीय प्रेरणा है...तुम प्रतिशोध लेना चाहते हो, परन्तु किस बात का प्रतिशोध लोगे ? उसने तुम्हारे साथ बुराई की है—इसी का न ? मगर सोचो तो, वह मनुष्य है मानवी दौर्बल्य उसमें भी विराजमान है। जिस प्रकार तुम आज उत्तेजित हो उठे हो, तुम्हें भले बुरे का ज्ञान नहीं रह गया है—उसी प्रकार वह भी नियति की प्रेरणा से भले-बुरे का ज्ञान खो बैठा, तभी तुम्हें दुःख मिला। ..प्रतिशोध लेने का विचार छोड़ दो। यदि ईश्वर चाहेगा तो भले दिन लौटेंगे..."

अधर ध्यानपूर्वक साधू की बातें सुन रहा था। इस समय उसका पागलपन बहुत कुछ कम हो गया था। वह साधू की बातों को सुन-कर वस्तुतः प्रभावित हुआ था और सोच रहा था कि साधू की बातें कितनी मार्मिक है ! बोला वह—"तो यह सब नियति की प्रेरणा है...विधि की विडम्बना है, बाबा !....क्या मनुष्यमात्र का इसमें कुछ भी दोष नहीं ?"

"यह जगत माया का आधार है। प्राणिमात्र यहाँ आकर अपनी इच्छा से कोई कार्य नहीं करता। ईश्वरीय प्रेरणा और दैवी शक्ति ही उससे भला या बुरा कार्य कराती है। तुम अपनी मानसिक कलुषता को धो डालो। सलिल जैसा उज्ज्वल बना लो अपने पाप पूर्ण हृदय को। तुम्हारी यश कीर्ति चारों ओर देदीप्यमान हो उठेगी...राम में रम जाओ ! राम ही तुम्हारा कल्याण करेंगे।

"राम !...राम ही को तो इतने दिनों से खोज रहा हूँ, बाबा...?" अधर पागल की हँसी हँस पड़ा—"अपने राम को ढूँढ़ रहा हूँ, मगर मिलते ही नहीं वे। न जाने कहाँ रुठकर चले गये हैं...मैं तुम्हारे राम से नहीं, अपने राम से मिलना चाहता हूँ !

आश्चर्य करते हो ? नहीं जानते मेरे राम को ?..." अधर ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से साधू की ओर देखा, फिर हँस पड़ा—"जान ही कैसे सकते हो ? तुम तो अन्धे हो ! ताऊ होते तो जानते विमल होता तो समझता, तुम विन्दु को नहीं जान सकते। वह देवी थी। अगाध-सागर-सी शान्त, चन्द्रमा-सी उज्ज्वल, फूल सी सुकोमल .. तुम उसे नहीं जानते ? नहीं जानते मेरे राम को ?....जाओ, चले जाओ !...."

अधर गाने लगा—

"मुझे राम से कोई मिला दे...बिन लाठी का निकला अन्धा,
राह से कोई लगा दे !"

गाता हुआ अधर अपना छूरा वहीं फेंककर, दौड़ चला एक ओर को। साधू इस विचित्र पागल को देखकर हैरान था, जो एक क्षण के लिए ज्ञान की बातें करता था तो दूसरे ही क्षण पागल-सी भाव-भंगिमा-प्रदर्शित करने लगता था।

अधर उस दिन इधर-उधर घूमता फिरता रहा। रात्रि में एक पेड़ के नीचे पड़ रहा। बहुत रात बीते तक वह जागता रहा। एका-एक उसके हृदय में अपने प्रिय घर को एक बार देख लेने की लालसा जाग उठी। वह लालसा इतनी प्रबल थी कि वह उसका दमन न कर सका। स्पन्दित हृदय से वह उठा और अपने गाँव की ओर चल पड़ा। साँय-साँय करती हुई रात्रि में छः मील का रास्ता उसने दो घण्टे में तय किया।

जब वह घर के सामने पहुँचा, उस समय लगभग आधी रात व्यतीत हो चुकी थी। अधर कच्ची सड़क पर खड़ा होकर मुख्य द्वार की ओर देखने लगा। उसके हृदय में मृदु स्पन्दन हुआ। उफ् ! एक दिन इसी सड़क पर वह ताँगे से उतरा था और एक रमणीय मूर्ति मुख्य द्वार की ओट में खड़ी होकर उसे मदभरे नयनों से देख रही थी। उसकी दृष्टि एकाएक उधर जा पड़ी थी ! उसने उस रमणीय मूर्ति को देखकर आश्चर्य प्रकट किया था। अहा ! कितना आनन्द आया था उस प्रथम मिलन में। किस प्रकार विन्दु के मदभरे

नयन शोखी से नाच उठे थे—याद आते ही आत्मविभोर हो उठा वह। भूला-भूला-सा वहीं खड़ा रहा।

थोड़ी ही देर बाद कुछ लोगों का पदचाप सुनकर चौंक पड़ा। छिपकर उनकी राह देखने लगा, जो दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे मुख्य द्वार की ओर बढ़े आ रहे थे।

वे सब मुख्य द्वार के सामने आकर खड़े हो गये—धीरे-धीरे थोड़ी देर तक न जाने क्या बातें करते रहे। उनके हाथों में हथियार देखकर अधर समझ गया कि उसका विचार दूषित है। कुछ देर तक बात करके उन सबने, न जाने कैसे मुख्य द्वार खोला और दबे पाँव भीतर की ओर बढ़े। अधर ने भी उसका पीछा किया।

* * * *

सारी प्रजा तारक से पीड़ित थी। उसके अन्याय तथा अत्याचार से सभी त्राहि-त्राहि कर रहे थे। कुछ ही दिनों बाद पीड़ित व्यक्तियों का एक दल संगठित हुआ और वह दल इस प्रयत्न में लगा कि जिस तरह भी हो सके, तारक से इसका प्रतिशोध लिया जाय। तैयारी होने लगी। विचार-विमर्श के पश्चात् अर्धरात्रि का समय इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा गया।

उस रात तारक जब पलंग पर लेटा तो उसका मन न जाने क्यों उद्विग्न था। रह-रहकर उसका हृदय व्याकुल हो उठता था। वह अनेक दुश्चिन्ताओं से आक्रान्त था। अपने दुष्कर्मों के लिए आज अनायास ही उसे पश्चाताप हो रहा था—आज उसे ऐसा लग रहा था जैसे सारा घर उसे काटने दौड़ रहा है। उस विशाल अट्टालिका में अब कोई न था।

रामू था, मगर तारक के अन्याय से ऊबकर आज प्रातःकाल वह भी न जाने कहाँ गायब हो गया था। वह अकेला ही था। सारे ऐश्वर्य का अधीश्वर बनकर तारक आज समझ पाया कि वास्तव में एकाकी जीवन नीरस है। पाप द्वारा उपार्जित यह अपार धन-राशि व्यर्थ है।

यही सब सोचते-सोचते उसे निद्रा आ गई। अर्द्धरात्रि को उसने अपने ऊपर भारी बोझ का अनुभव किया। उसकी निद्रा भंग हो गई और भय तथा आवेश से वह चीख पड़ा। उसने देखा—एक आदमी उसकी छाती पर सवार है और उसके हाथ का चमचमाता छूरा उसके कलेजे में प्रवेश करना ही चाहता है। परन्तु जिस बात ने तारक को महान आश्चर्य चकित कर दिया था, वह यह थी कि उसकी छाती पर सवार आदमी और कोई नहीं, उस घर का पुराना सेवक रामू था। कमरे में कई आदमी और दिखाई पड़ रहे थे।

"आज तेरे सारे अत्याचार का अन्त कर दूँगा..." रामू घृणा-युक्त स्वर में बोला—"यह देख! इतने आदमी खड़े हैं, सभी तेरे रक्त के प्यासे हैं। सभी अत्याचार का अन्त करने आये हैं। याद कर अपने पाप के दिनों को? ताऊ की जान तूने ली, बिन्दु जैसी देवी तेरे ही अत्याचार से ऊबकर चली गई, अधर कुमार जैसा मालिक तेरे ही षड्यन्त्रों के कुपरिणाम से आज हमसे दूर है—न मालूम कहाँ? इन सब कुकर्मों का आज तुझे फल मिल जायगा। अन्यायी, दुरा-चारी! देख—पाप का फल कितना कटु होता है..."

रामू ने अपने हाथ का छूरा ऊपर किया। अब वह समय सन्नि-कट ही था कि वह लम्बा छूरा तारक के कलेजे में घुस कर उसके रक्त से अपनी पिपासा शान्त करता कि उसी समय उसके सर पर किसी ने पीछे से इतनी जोरों से आघात किया कि वह चीखकर भूमि पर लेट गया और पीड़ा से छटपटाने लगा। तारक आश्चर्य करता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने देखा—उसके सामने अधर खड़ा है हाथ में एक लोहे का लम्बा छड़ लिए हुए—वही अधर जिसका उसने सर्व-नाश किया था, वही अधर आज इस संकट के समय उसकी प्राण की रक्षा की है।

रामू छटपटाता हुआ भूमि पर पड़ा था। उसके साथी अधर को पहचान कर भाग चुके थे। अधर तारक के सामने आकर खड़ा हो गया बोला—"तुम्हारी नादानी अभी तक नहीं गई! रात को इतनी

असावधानी से सोते हो ?"

तारक बड़बड़ाया—"उफ् ! यह मनुष्य है या देवता ?"

"देवता !" कराहता हुआ रामू बोला—"परन्तु देवता को तुम न समझ सके !"

अब तक कुछ स्वस्थ हो गया रामू कमरे से बाहर हो गया। अधर भी जा चुका था।

"समझ लिया रामू ! अब उन्हें लौटा लाऊँगा....देवता के बिना मन्दिर सूना है..." उसकी बात सुनने के लिए वहाँ रामू नहीं था। वह अधर के पीछे दौड़ गया था, परन्तु दूर तक खोज करने पर भी उसका उसे कोई पता न लगा।

तारक आकर कमरे में धम्म से खाट पर गिर पड़ा। बहुत दिनों के बाद आज उसे रोना आया। हिचकियाँ लेता हुआ वह उठा। ताऊ के चित्र के सामने आकर हाथ जोड़ बोला—"क्षमा करो मेरे अच्छे ताऊ ! तुम्हारे अधर को, तुम्हारी बिन्दु को मैंने ही विनाश के पथ पर भटकने के लिए बाध्य किया है—मैं जल रहा हूँ, शोक और ग्लानि से। मुझे शान्ति प्रदान करो, ताऊ !"

वह बालक की भाँति रोने लगा—"मैंने उसके साथ क्या पाप नहीं किया ?...सब कुछ जानते हुए भी देवता ने मेरे साथ भलाई ही की। मेरे अब तक के सारे अपराधों को भूलकर आज उसने मेरी प्राण-रक्षा की। और मैं ...मैं अधम हूँ, खूनी हूँ, पापी हूँ..." ताऊ के सामने एक निरीह व्यक्ति-सा वह कलपता रहा। आज उसे अपने सारे अपराधों पर ग्लानि हुई और यह ग्लानि दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई।

*   *   *   *

अधर का पागलपन शीघ्र ही दूर न होने वाला था। उसके हृदय में बिन्दु की याद थी, विमल के लिए पश्चाताप और तारक के लिए दया थी ! वह पागलपन में गाँव-गाँव घूम रहा था,

गाता हुआ—"मुझे राम से कोई मिला दे...."

कोई उसके गाने पर तरस खा कर पूछ बैठता—"क्या चाहता है, पगले ?"

वह कहता—अपने राम को चाहता हूँ...जानते हो उसे ?...."

"जानता हूँ...वे तो अवध में हैं।"

यह सुनते ही अधर झूम-झूमकर गा उठता—"कोई कहे वे बसे अवध में ..कोई कहे वृन्दावन में..."

फिर वह अलापता हुआ आगे बढ़ जाता—"कोई कहे वे बसे अवध में, कोई कहे वृन्दावन में। कोई कहे तीरथ मन्दिर में कोई कहे मिलते बन में !...."

अधर गाता हुआ अपने राम की खोज करता रहा—कभी रोता कभी हँसता और कभी अट्टहास करता हुआ, मगर उसके राम उसे न मिले। कोई नहीं समझ पाता था कि आखिर इस पगले के राम कहाँ रहते हैं ? कौन जानता था कि एक मनोहर मूर्ति उस पगले के अर्न्तपट पर अंकित है !...

२१

सुक्खन ने हाथ का लम्बा बरछा एक पेड़ से लगाकर खड़ा कर दिया और ध्यानपूर्वक खड़ खड़ होती आवाज को सुनने लगा।

आज प्रातःकाल ही से वह जंगली सूअर का शिकार करने निकला था और दिन में ही रात लगने वाले इस भयावने जंगल में अपने समूह से छः कोस दूर आ पहुँचा था। यहाँ आकर उसे निराशा ही हुई।

खड़खड़ की आवाज बन्द हो गई। वह खिझलाता हुआ जंगल में इधर-उधर टोह ले रहा था कि उसे किसी आदमी के गाने की आवाज सुनाई पड़ी—"मेरे राम से कोई मिला दे—"

इस आवाज को सुनते ही सुक्खन को महान आश्चर्य हुआ कि ऐसे भयावने भूखण्ड में कौन गा रहा है ?

वह उस गाने की आवाज को अनुसरण करता हुआ आगे बढ़ने लगा एक झाड़ी के पास पहुँचकर वह रुक गया। उसने देखा एक पागल तन्मय होकर गा रहा है—"मेरे राम से कोई मिला दे"

एक बनैले सूअर को ठीक उस पागल के पीछे बैठा हुआ देख वह भयभीत हुआ, परन्तु सावधान हो गया और प्रसन्नता से खिल उठा। उसने अपना लम्बा बरछा हाथ में तौला, दूसरे ही क्षण सरसराता हुआ बरछा जाकर सूअर के कलेजे में धँस गया। भयानक घुरघुराहट के साथ वह विकराल सूअर पृथ्वी पर लेट गया।

कुछ गज की दूरी पर एक पत्थर की चट्टान पर बैठा हुआ पागल चौंककर उठ खड़ा हुआ। उसने पीछे घूमकर छटपटाते सूअर को देखा। फिर सामने शिकारी को देखकर, हँसता हुआ उसके सामने आ खड़ा हुआ। बोला तुम—"मुझे मेरे राम से मिला सकते हो?...."

"मालूम होता है पागल हो तुम!..."

"पागल तुम हो, मक्खियाँ मारने से बहादुर नहीं बन जाओगे। क्यों मारा इस सूअर को, बोलो?..."

"सुक्खन ने ध्यानपूर्वक उस पगले को देखकर पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम?..." पागल हँस पड़ा—"नहीं जानते मेरा नाम? तब क्या जानते हो? अन्घड़ जानते हो...और कुम्हार भी—हा हा मेरा नाम अन्घड़ कुम्हार है!...सच कह रहा हूँ मैं.... तुम कौन हो?"

"इस जंगल में क्यों आये?...." सुक्खन ने उसकी बेतुकी बातों से आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"अपने राम की खोज में...जिससे पूछा, उसी ने कहा कि तेरे राम बन में मिलेंगे—बस, मैं यहाँ चला आया...यह तो बन है न?..."

"मेरे साथ चलोगे?..." सुक्खन ने पूछा। उसके मन में इस विचित्र पागल का पूर्ण इतिहास जानने की उत्सुकता उत्पन्न हुई।

"चलूँगा...चलूँगा क्यों नहीं ?...मगर मेरे राम से मिला दोगे न ? तुम मेरे राम को जानते हो ?...नहीं जानते ?....ताऊ से पूछना नहीं तो विमल से पूछ लेना, उसका नाम विन्दु है।"

"विन्दु !...एक स्त्री ?..." सुक्खन अस्त-व्यस्त-सा बोला।

"पतली-सी, गोरी-सी, सुन्दर...अति सुन्दर है वह ! मदभरे नयन हैं उसके बायें गाल पर एक बड़ा सा तिल है..."

सुक्खन चौंक पड़ा। न जाने क्यों कल्लन की याद हो आई उसे पगले से पूछा—"कहाँ है तुम्हारा घर ?"

"यहा से छः कोस दूर—चल सकोगे ?"

"मोटर पर चलूँगा...क्या मोटर नहीं हैं तुम्हारे पास ? कोई ताँगा भी नहीं ? अच्छा चलो, पैदल ही चल चलूँगा मगर तुम भी बड़े पागल हो, मोटर भी नहीं...ताँगा भी नहीं...कुछ भी नहीं..." कहकर वह जोरो से हंस पड़ा।

सुक्खन ने उस भीमकाय सूअर को पीठ पर लादा, बरछा हाथ में लिया और तेजी से चल पड़ा। पागल भी उसका अनुसरण करता हुआ कुछ दूर चलकर एका-एक खड़ा हो गया। बोला—"मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा। मोटर की तरह दौड़ते हो...जैसे धीरे-धीरे चलना ही नहीं जानते ..गदहे सा बोझ लादे हो और चलते हो घोड़े जैसा..."

सुक्खन हँस पड़ा। बोला—"लो धीरे-धीरे चलता हूँ। देखो, सँभल कर चलो, नहीं ठोकर लग जायगी...देखो !...देखो !" सुक्खन के कहते-कहते ही वह पागल ठोकर खाकर गिर पड़ा। पैर में चोट लग जाने के कारण रक्त की बूँदें चुकचुका आई। वह बोला "बड़ी खराब सड़कें हैं इस शहर की ?"

किसी तरह रोते-झींकते चार घण्टे में, छः कोस का रास्ता तय हुआ। समूह के एक मील दूर रह जाने पर सुक्खन के कानों में दो आदमियों के बात करने की आवाज आई। सुक्खन उस आवाज को तुरन्त ही पहचान गया। उसमें से एक आवाज थी सरदार की और

दूसरी कल्लन की।

सुक्खान को आश्चर्य हुआ कि इस सुनसान झाड़ी में सरदार कल्लन के साथ क्या कर रहा है ? वह दबे पाँव उस झाड़ी की ओर बढ़ा। पहले अधर को पीछे आने का संकेत किया। झाड़ी के पास आकर वह रुका और घनी द्रुम लताओं के मध्य से उसने देखा, सरदार और कल्लन एक चट्टान पर बैठे हैं। कल्लन का दाया हाथ सरदार के हाथ में है।

कल्लन कह रहा है—"ऐसा न कहो सरदार ! मैं मानता हूँ कि तुमने मेरे साथ महान उपकार किया है, मगर जब मैं यह सोचता हूँ कि तुम्हारे उपकार का बदला दूँ तो न जाने क्यों मेरा हृदय हाहाकार करने लगता है। हृदय में रह-रहकर यही भाव आता है कि मैं..."

कल्लन की आवाज कान में पड़ते ही पागल चौंक पड़ा। सुक्खान के बगल में होकर वह उस ओर देखने लगा। जो कुछ उसने देखा, उससे उसे महान आश्चर्य हुआ। वह चिल्ला पड़ता, यदि तुरन्त ही सुक्खन ने उसका मुँह बन्द न कर दिया होता। सुक्खन ने अपनी तीव्र बुद्धि से सारी परिस्थिति समझ ली। वह समझ गया कि इस पगले से और कल्लन से अवश्य कोई सम्बन्ध है। वह अधर को घसीट ले चला। अधर कहने लगा—"छोड़ दो मुझे, अपने राम के पास जाने दो।! तुम्हारी तरह मैं भी अन्धा नहीं... भला अपने राम को भी नहीं पहचानूँगा..."

"यह तो कल्लन है, एक पुरुष !"

"तभी कहता हूँ कि तुम अन्धे हो !...." अधर हँसा—"पुरुष के कपड़े पहनने से कोई स्त्री-पुरुष नहीं बन सकती। यह मेरी बिन्दु है, मेरी बिन्दु ! समझा रे अन्धे !"

"तुम अच्छी तरह पहचानते हो उसे ?"

"मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ, व्यर्थ समय नष्ट न करो, मुझे जाने दो।"

"उसके पास जाने से तुम और भी विपत्ति में पड़ जाओगे।

सरदार तुम्हारे रक्त का प्यासा हो जायगा। इस समय धैर्य से काम लो...मेरे साथ मेरे झोपड़े में चलो, अपनी थकावट दूर करो—मैं तुम्हारी सहायता करूंगा..."

अधर की स समय विचित्र दशा हो रही थी। उसका पागलपन क्रमशः दूर होता जा रहा था। आनन्दातिरेक से उसके शरीर में तीव्र गति से रक्त संचार होने लगा था। उसे ऐसा भान होने लगा था जैसे वह किसी नई दुनिया में आ पहुंचा हो। सुक्खन का आश्वासन पाकर उसकी विकलता कुछ कम हुई।

सुक्खन चुपके से अपने झोपड़े में आ गया। अधर को चारपाई पर बिठा दिया। बोला—"तुम्हारी अवस्था ठीक हो चली है, यह देखकर मुझे आश्चर्य के साथ-साथ प्रसन्नता हो गई है। मैं तुम्हें एक दवा देता हूँ, वह तुम्हारे पागलपन को पूर्णतया दूर कर देगी। जो दवायें मेरे पास हैं वह बड़े-बड़े डाक्टरों के पास न होगी। भारत की अमूल्य औषधियाँ जंगलों में ही उत्पन्न होती है!" सुक्खन ने लपकते हुए झोले में से चूर्ण जैसा, जाने क्या निकाला, उसे पानी के साथ गिलास में घोला और अधर के आगे रखकर बोला—"पी लो इसे!"

अनिच्छा होते हुए भी अधर ने वह जंगली दवा पी ली, पीते ही उसके शरीर में विद्युत-सी शक्ति लहरा उठी। उसमें नवचेतना आ गई। मस्तिष्क में शीतलता का अनुभव हुआ। दूसरे ही क्षण अधर की मानसिक शक्ति पूर्ववत हो गई। उसका बाह्य पागलपन उसकी आन्तरिक अशान्ति उसका शारीरिक दौर्बल्य दूर हो गया।

"तो वह तुम्हारी प्रेमिका है?...." पूछा सुक्खन ने।

"हाँ, उसका नाम बिन्दु है! वह मुझे देखते ही पहचान जायगी..." अधर ने कहा।

"यह असम्भव है—उसने अपनी स्मरण-शक्ति खो दी है..." सुक्खन बोला। सुनकर अधर के भाल पर चिन्ता की रेखायें खिंच

आई !

"हो सकता है तुम्हें देखकर उसके मस्तिष्क को झटका लगे और उसकी स्मरणशक्ति लौट आये—इसी प्रकार एक बार मैं भी अपनी स्मरणशक्ति खो बैठा था..." सुक्खन बोला।

"तुम उससे मुझे जल्दी मिला दो..." अधर दीन वाणी में बोला—"मेरा हृदय कहता है कि वह मुझे देखते ही पहचान लेगी..."

"तुम निश्चिन्त रहो !...मैं अपनी जान देकर भी तुम्हारा कल्याण करूँगा और सरदार का सर्वनाश करूँगा। उसका अपराध अक्षम्य है। तुम यहीं बैठो। अच्छा हो यदि थोड़ा सोकर विश्राम कर लो, मैं सरदार से निपट आऊँ...."

"मैं भी चलूँ ?"

"तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारे साथ चलने से मेरे कार्य में बाधा पड़ सकती है..." सुक्खन ने कहा और अपना लम्बा बरछा कन्धे पर रख कर झोपड़े से बाहर हो गया।

क्रोधावेश में लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ सुक्खन उस ओर बढ़ चला, जिधर उसने सरदार और कल्लन को देखा था। उसे अधिक दूर न जाना पड़ा। सरदार और कल्लन लौट रहे थे ..सुक्खन को आवेश में भरा हुआ आता देख, वे दोनों ठिठक कर खड़े हो गये। किसी आसन्न अनिष्ठ की आशंका ने सरदार को एक क्षण के लिए विचलित कर दिया।

"सरदार !" सुक्खन की कड़कती आवाज दूर तक फैल गई। साथ ही उसका बरछे वाला हाथ उत्तेजना से काँप उठा।

"क्या है ?....है क्या सुक्खन ?" सरदार ने गम्भीरता से पूछा।

उसकी बायीं आँख फड़क उठी !

"तुमने परम्परागत रूढ़ियों की अवहेलना की है—तुमने एक स्त्री को पुरुष-वेष में अपने पास रखा है। यह कल्लन एक स्त्री है,

इसका नाम बिन्दु है....''

"चुप रह !..." सरदार चिल्ला उठा—"नहीं तो जीभ पकड़ कर ऐंठ दूँगा।"

"ब्रह्मचर्यव्रत जैसी पवित्र वस्तु पर कलंक-कालिमा पोतकर, तुम साहस करते हो मेरी जीभ ऐंठने की। लज्जा नहीं आती तुम्हें सारे समूह के साथ विश्वासघात कर, उसकी अवहेलना कर, तुम निरापद समझते हो अपने को। इतने पतित न बनो सरदार !"

"सुक्खन !" क्रोध से काँपता हुआ सरदार दो पग आगे बढ़ आया ! सुक्खन ने अपना बरछा सीधा किया !

कल्लन चिल्ला उठा—"दया करो सुक्खन ! मेरे जीवन-रक्षक के प्रति इतने कठोर न बनो। मेरे कारण इन पर यह असह्य-लाँछन न लगाओ। मैं दोषी हूँ, मुझे समाप्त कर दो। सब झगड़ा आप ही आप समाप्त हो जायगा।"

सुक्खन ने अपना बरछा प्रबल वेग से सरदार पर चला दिया। बरछा सर्राता हुआ सरदार की छाती में जा लगा। सरदार ने उसे खींचकर दूर फेंक दिया और उसी अवस्था में, आहत क्रुद्ध सिंह की तरह सुक्खन की गरदन पकड़ कर बोला..." छोकरे ! सँभाल अपने को..."

"सावधान !...." समूह के उस बुड्ढे माँझी की आवाज सुनाई पड़ी जो बहुत दिनों से सरदार की गति-विधि को देखता आ रहा था।

सरदार ने भय-विस्फारित नेत्रों से देखा, समूह के आदमी एक के बाद एक चले आ रहे हैं। सरदार ने सुक्खन को छोड़ दिया और प्रज्वलित नेत्रों से उस वृद्ध की ओर देखने लगा। उसकी छाती पर के घाव से रक्त चू रहा था—टप ! टप !

"यह सब क्या है, सरदार ?" पूछा उस वृद्ध ने।

"सुक्खन की ईर्ष्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं...." सरदार ने गर्व से गरदन ऊँची कर कहा।

"यह एक बहाना मात्र है...." कुछ कठोर स्वर में बोला—"आज यह सारा समूह तुमसे पूछने आया है कि यह कल्लन कौन है ? स्त्री या पुरुष ? इसके कपड़े उतार कर हमें दिखाओ ?...."

"मैं दिखाता हूँ...." कहता हुआ सुक्खन आगे बढ़ा। सरदार गरजा—"खड़े रहो सुक्खन !"

"सरदार !..." गरज पड़ा बुड्ढा—"तुम पदच्युत किये जाते हो। जब तक तुम्हारी निर्दोषिता का प्रमाण नहीं मिल जाता, तब तक तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना की जायेगी। तुम समूह के कार्यों में हस्तक्षेप न करो।"

"सुक्खन ! तू आगे बढ़ उसके कपड़े उतार !"

सुक्खन आगे बढ़ा। कल्लन के पास आकर वह खड़ा हो गया। उसने उसकी निमस्तीन पकड़ कर खींच ली। निमस्तीन फट गयी कल्लन का उभरा हुआ वक्षस्थल स्पष्टतया दिखाई देने लगा। लज्जा से अभिभूत हो वह बैठ गई।

"सरदार ! धिक्कार है तुम्हें....मुँह में कालिमा पोतकर डूब मरो अमरावती के जल में..." सारा समूह एक स्वर से चिल्ला उठा "तुमने अपने कुल पर कलंक का टीका लगाया है..."

"खबरदार ! जबान सीमा से बाहर न जाय..." सरदार की भवें फिर तन गईं....असहाय को शरण देना मनुष्य का कर्तव्य है। मैंने इसे अपने पास इसलिए छिपा रखा था कि तुम इसे स्त्री जान कर दल से निकाल बाहर करते और उसका कोई सहारा न रह जाता। वह अपने जीवन की आहुति दे देती....मेरा इसके साथ पुत्री-वत प्रेम है। मैं इसे अपने से दूर नहीं कर सकता। यद्यपि मैंने नियम के विरुद्ध एक युवती अपने पास रखा है, परन्तु मेरा ब्रह्मचर्यव्रत अखण्ड है—और अखण्ड रहेगी। और यदि तुम परीक्षा लेना चाहते हो, मैं तैयार हूँ...." गरज पड़ा सरदार।

"प्रायश्चित तुम्हें करना ही होगा, सरदार !...परीक्षा देनी ही पड़ेगी..." उस बुड्ढे ने कहा।

"इस स्त्री को भी उसके प्रेमी को सौंप देना पड़ेगा !...." सुक्खन ने आदेशात्मक स्वर में कहा—"वह मेरे झोपड़े में सो रहा है...."

"देखो सरदार !..." वह बुड्ढा बोला—"अमरावती नदी वर्षा के आगमन से गर्जन करती हुई प्रवाहित हो रही है। उसकी उत्ताल तरंगों के साथ कल तुम्हें परीक्षा देनी होगी। एक नाव पर सवार होकर तुम्हें सीधे—एकदम सीधे उस पार जाना होगा। बहाव तीव्र है, अगर तुम्हारा ब्रह्मचर्य अखण्ड है तो सकुशल उस पार हो जाओगे। जरा भी तुम्हारी नाव बहाव की ओर गई कि परीक्षा में असफल हुये..."

२२

वर्षा के आगमन से अमरावती नदी भयंकर रूप धारण किये हुए थी। उसकी उत्ताल तरंगे हाहाकारमयी गर्जन करती हुई विकराल गति से प्रवाहित हो रही थी। बहाव का वेग इतना प्रबल था कि उसमें नाव का ठहरना असम्भव था। इसलिए आजकल नदी में नावों का आवागमन एकदम बन्द था।

मगर सरदार को परीक्षा देनी थी—उसे भयंकर रूपधारिणी नदी के साथ खिलवाड़ करना ही था कितना भयंकर था यह खिलवाड़ ! कितनी कठोर थी यह परीक्षा।

समूह के किसी माँझी की ऐसी भयावह परिस्थिति के समय नदी में नाव उतारने का साहस नहीं हो सकता था ! मगर सरदार विचलित नहीं हुआ। उसे अपने आत्मबल पर प्रगाढ़ विश्वास था। उसे आशा थी जिस समय वह अपने विशालकाय हाथों द्वारा डाँड़ पकड़कर नाव पर सवार होगा, तो लहरों को क्या मजाल की नाव को जरा भी पथ-विमुख कर सके।

सरदार के लिए वह समय बड़ा ही भयंकर था, जब कि एक पतली-सी डोंगी पर नंगे वदन वह सवार हुआ। सरदार की परीक्षा

देखने के लिए सारा समूह किनारे पर आ खड़ा हुआ था। सभी आश्चर्य और भय के साथ सरदार का वह असीम दुस्साहस देख रहे थे।

अधर सुक्खन के झोपड़े में आराम की नींद सो रहा था।

सरदार ने किनारे खड़े होकर सूर्यदेव को दण्डवत किया। अमरावती के जल को सर से लगाया और निर्भयतापूर्वक नाव पर आकर बैठ गया। सभी हर्ष से जय जयकार कर उठे। सरदार के बलिष्ट हाथों ने नाव की डांड सम्हाली। नाव धीरे धीरे आगे बढ़ चली।

एकाएक नाव को प्रबल धक्का लगा। लहरों का भयानक वेग संभालना कठिन हो गया। सरदार घबड़ा उठा। उसने फुर्ती से पतवार सीधा किया। डांड से ठेस लगायी। अपने भीमकाय शरीर का सारा पराक्रम उसने इस समय केन्द्रीभूत कर लिया था।

नाव का मुंह सीधा हुआ। वह उत्ताल तरंगों को चीरती हुई तीव्र गति से आगे बढ़ी। फुफकारती हुई विकराल नदी की छाती पर तीर की तरह वह दौड़ चली। सरदार का निशाचर जैसा काला शरीर डांडों की गति के साथ अगाध गति से झूमने लगा। लहरें आती और नाव के परदे से टकरा कर निराश हो लौट जाती। नाव इन लहरों की ओर से एकदम लापरवाह थीं। लहरों और नाव के तुमुल युद्ध से सरदार के शरीर पर पानी की फुहारें पड़ कर उसे सावधान कर रही थी।

सब आश्चर्यचकित थे सरदार का असीम साहस, अवर्णनीय और अतुलित शौर्य देखकर! वास्तव में वह साहसिक नाविक था। नाव पर इसका पूरा अधिकार था और लहरों पर भी।

नाव पर धैर्य के साथ बैठा हुआ वह अपना कार्य-सम्पादन कर रहा था। उसके चारों ओर अमरावती नदी विकराल रूप से ताण्डव कर रही थी। किनारे पर खडे हुए मांझीगण अनिमेष दृष्टि से उसकी गतिविधि का अवलोकन कर रहे थे। सरदार की नाव सीधे

ठीक निशाने पर जा रही थी। नाव उस समय ठीक मँझधार में पहुँच गई थी। उसका शरीर पूर्ववत झूम रहा था। नाव तीर की-सी तेजी से दौड़ी जा रही थी....एका-एक सभी चीख पड़े।

सरदार के रास्ते से ही, कुछ आगे एक भँवर पड़ रहा था। आस-पास का पानी प्रबल वेग से खिचकर भँवर में समाता जा रहा था। वह पाँच गज का गोला भँवर था—इतना भयानक, इतना विकराल कि साहसी व्यक्ति भी सन्तुलन नहीं रख सकता था।

यदि सरदार जरा भी अपनी नाव बगल करता है तो उसकी शक्ति घट जायगी और नदी की प्रबल धारा इसकी नाव को खींच ले जायगी। भयंकर स्थिति आ उपस्थित हुई। उसका हृदय धकधक करने लगा।

सरदार ने भी देखा उस विकराल भँवर को, जो मुँह बाये उसके पथ में बाध स्वरूप आ पड़ा था। पर उसके चौड़े मस्तक पर कहीं कोई भय की रेखा नहीं उभरी थी। शरीर में जरा भी शिथिलता नहीं आई थी। धीरे-धीरे बढ़ती हुई नाव विशाल भँवर के पास पहुच चुकी थी। उसने नाव को भँवर से बचाने के लिये दूसरे ओर मोड़ा ही था कि सुक्खन चिल्लाया—"देखो सरदार! अपने कल्लन को..."

एका-एक रघुवा ने दौड़कर उसका मुँह पकड़ लिया—"चुप रह रे निशाचर!..." वह चिल्ला पड़ा—"सरदार के सामने जीवन-मृत्यु का प्रश्न है। क्यों उसका ध्यान भंग करता है? कल्लन को ले जाना है तो ले जा।"

मगर सुक्खन की तेज आवाज सरदार के कानों में जा पड़ी। थी। एक क्षण के लिए उसने घुमकर देखा किनारे की ओर। सुक्खन कल्लन का हाथ पकड़कर उसे घसीटे लिए जा रहा था।

"पकड़ो! पकड़ो उसे!...." सरदार चिल्ला उठा नाव पर से। क्रोध से वशीभूत हो, वह आसन्न संकट तक को भूल गया।

उसकी सारी शक्ति, विन्दु पर केन्द्रित हो गई थी।

"सरदार! सरदार!..." सारा समूह चिल्ला पड़ा—"सम्हालो अपने को, सरदार! देखो, अपने सामने विकराल भंवर!...."

मगर सरदार उत्तेजित हो उठा था। डांड़ उसके हाथों से छूटकर नदी के तीव्र प्रवाह में जाने कहाँ बह गये। नाव बेसहारे हो गई थी, क्योंकि सरदार नाव पर खड़ा होकर चिल्लाने लगा था—"पकड़ो ...पकड़ो! वह दुष्ट मेरी अमूल्य निधि...मेरी पुत्री को..."

"सरदार!..." सारा समूह माथा ठोक रहा था—"कूद पड़ो नाव से, आगे भंवर है।"

चुम्बक की तरह उस भंवर ने सरदार की नाव को अपने कराल गाल में खींच लिया। सरदार की नाव फिरहरी-सी नाच उठी। सरदार चिल्लाता रहा—"पकड़ो पकड़ो!..."

नाव का अगला भाग भँवर के विकराल उदर धंसने में लया और देखते ही देखते उस भयानक भंवर ने उस नाव को अपने उदर में समेट लिया। सरदार को भी निगल गई वह।

समूह के लोगों की आँखें सिक्त हो गई।

सूर्य को बादलों ने ढंक लिया।

उफ्!...कितनी भीषण थी यह परीक्षा!

*   *   *   *

"लो मित्र! तुम्हारी विन्दु तुम्हारे पास उपस्थित है..." बाजे पर से सुक्खन की आवाज आई। अधर ने चौंककर देखा। देखा—उसके सपनों की देवी, उसके हृदयोद्यान की कलि उसके तन-मन की अधिष्ठात्री विन्दु उपस्थित है—कल्लन के रूप में वह हर्षातिरेक से आगे बढ़ा।

"विन्दु..." उसने उल्लसित स्वर में पुकारा।

विन्दु वह आवाज सुनते ही चौंक पड़ी। उसने अधर की ओर ध्यानपूर्वक देखा। अनजाने वह उठ खड़ी हुई। उसका मस्तिष्क उड़ता हुआ-सा मालूम पड़ने लगा—"कौन है यह?...कहीं देखा है इसे....

बड़ा प्यारा है...कौन हो तुम ?"

एका-एक उसकी चेतनाशक्ति को आकस्मिक गहरा धक्का लगा और दूसरे ही क्षण उसकी विलुप्त स्मृति लौट आई ! वह चिल्ला पड़ी—"मेरे प्राण.... !"

दौड़कर वह अधर से लिपट गई।

सुक्खन सर नीचा किये बाहर चला गया।

वर्षों से बिछुड़े विन्दु के शरीर को, अधर ने अपने आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लिया। विन्दु का शरीर आनन्दातिरेक से चेतना-हीन-सा हो गया। उसके नयन झर्र-झर्र अश्रु वर्षा करने लगे। उस समय उन दो प्रेमासिक्त प्राणियों का पुनर्मिलन बड़ा ही हृदयस्पर्शी एवं कारुणिक था।

सुक्खन आकर एक पत्थर की चट्टान पर बैठा था कि रघुवा के साथ उसने एक आदमी को आते देखा। रघुवा ने कहा—"वह तुमसे मिलना चाहता है सुक्खन !"

सुक्खन ने आश्चर्य भरी दृष्टि उस मनुष्य पर डाली। उसके कपड़े फट गये थे, बाल रुखे थे आँखें अश्रुपूर्ण थी। उसके हाथों में मुर्झाया फूल का गुच्छा था।

उसकी वेश-भूषा पागलों की-सी थी परन्तु देखने से लगनता था, जैसे पश्चात्ताप की अग्नि में झुलस कर वह प्रायश्चित का अभिलाषी हो। वह सुक्खन को उद्देश्य कर दीन वाणी में बोला—"मेने सुना है, अधर भाई तुम्हारे यहाँ हैं। मुझे उनके पास ले चलो—ऐसा न हो कि वे फिर कहीं चल दें...." वह आदमी रुका, फिर कहने लगा—"आज महीनों से मैं उनकी खोज कर रहा हूँ, परन्तु मेरा दुर्भाग्य कि वे कहीं न मिनले बताओ मुझे वे कहाँ हैं ..तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ... उसने झुककर सुक्खन के पैर पकड़ लिये।

सुक्खन ने उसे उठाया, पूछा—"कौन हो तुम ?"

"मेरा नाम तारक है...मैं पापी हूँ, दुराचारी हुँ। पश्चात्ताप दावाग्नि बनकर मेरे शरीर के रक्त माँस को जला रही है। मैं अधर

माई के पैरों पर गिरकर क्षमा मागूंगा, उनकी चरण धूलि माथे से लगाऊंगा, उनके चरण पर अपना अर्घ्य—यह फूलों का गुच्छा अर्पण करूंगा।" कहते-कहते उसे मूर्छा-सी आने लगी—पर शीघ्र ही आत्मबल ने उसे गिरने से बचा लिया।

"तुम धैर्य धारण करो थोड़ी देर रुको, मैं...."

"थोड़ी देर रुकना मेरे लिए असम्भव है। प्रजा ने विद्रोह कर दिया है। बिना उनके विद्रोहाग्नि शान्त नहीं हो सकती। मैं जान लेकर भागा आ रहा हूँ। मेरे ऊपर दया करो माई!...."

"वह दरवाजा है .." सुक्खन ने स्थिति की गम्भीरता का अनुभव कर अपनी झोपड़ी का दरवाजा दिखला दिया।

तारक हाथ में फूलों का गुच्छा लिए हुए शीघ्रतापूर्वक झोपड़े के दरवाजे पर पहुँचा।

उसने देखा—अधर और विन्दु, दोनों युगल प्रेमी आपस में बातें कर रहे हैं। दोनों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है।

तारक का हृदय हाहाकार कर उठा—उफ्! इन दोनों अभागे प्राणियों का विनाशकर्त्ता स्वयं वहीं तो है? उनकी बसी-बसायी दुनिया उसी ने तो नष्ट की है उफ् कितना कृतघ्न है वह।

अकस्मात् दरवाजे पर धड़ाम से किसी के गिरने की आवाज ने अधर और विन्दू को आकर्षित किया। दोनों दौड़ पड़े द्वार की ओर। यह देखकर उनके आश्चर्य का पारावार न रहा कि धड़ाम से गिरने वाली कोई वस्तु नहीं, मनुष्य है—तारक है...वह मूर्छितावस्था में पड़ा हुआ था।

अधर उसके सर को गोद में रखकर हवा करने लगा। तब तक माँझियों का दल वहाँ आ पहुंचा। सभी ने मिलकर उसे होश में लाने का प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ!

कदाचित् क्षुधा की ज्वाला को सहन न कर सकने के कारण उसकी आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़ चुकी थी।

* बस *